ॐ नमः सिद्धं

गुलाबी प्रभा

सतयुग में सत्य का सूर्य वत् प्रकाश करने वाली
सतीयों समान कलयुग में भी सत्य के
अरुणोदय की गुलाबी प्रभा डालने वाली
सती गुलाब बाइ का संसारिक व
धर्मिक संक्षिप्त वृतान्त

सति स्त्रीयें सत्य धर्माभिलाषियों को अनुकर
णिय व श्वेताम्बर दिगाम्बरका एक्यता दर्शक.

लेखक
बालब्रह्मचारी श्री अमोलकऋषिजी महाराज
की पूर्ण सहायतासे
मणिलाल शिवलाल शेठ.
सेक्रेटरी-जैन शास्त्रोद्धार कार्यालय सिकन्द्राबाद (दक्षिण)

प्रसिद्ध कर्ता
दक्षिण. हैद्राबाद का-ज्ञानवृद्धि खाता
प्रत-१२५० [मूल्य-नम्र] वि सं. १९७६.

जैन शास्त्रोद्धार प्रिंटिंग प्रेस, स्टेशनरोड सिकंद्राबाद (दक्षिण)

प्रस्तावना.

गाथा-जिणवयण अणुरत्ता, जिणवयण जे करंत्ति भावेणं ॥

अमला असंकिलिट्ठा, ते हुंत्ति परित संसारी ॥ १ ॥

उत्तराध्ययन अ० ३६.

अर्थात—जो भव्यों श्री जिनेश्वर प्रणित सूत्र के वचनों में मिथ्यात्वादि मल रहित और शंकादि क्लिष्टा रहित अनुरक्त बन कर शुद्ध भाव सहित सम्यक् प्रकार से आराधन करते हैं वे जीवों परित संसारी होते हैं अर्थात्—स्वल्प काल में ही इस अनादी संसार में संसृति परिभ्रमण करने का अन्त कर अनन्त मोक्ष के सुख प्राप्त करते हैं. यद्यपि अनादि काल से जिन प्रणित जैन धर्म तीनों लोक में अखंडित पणे व्यापाव्याप होरहा है. संख्यात मनुष्यों और असंख्यात देवताओं व तिर्यंचों इस का सदैव आराधन करते हैं तथापि भरतैरावत क्षेत्र में अनादि से समय प्रवृत्ति होने के सद्भाव से लुप्तालुप्त होता रहता है. फक्त दश कोटाकोटी सागरोपम में एक कोटाकोटी सागरोपम ही प्रसिद्धी में रहता है. जिस में ही वर्तमान समय तो हुंडा सर्पनी काल कहलाता है इस का वर्णन शास्त्रकारने किया है कि यह अनन्त काल में किसी एक वक्त आती है. इस में धर्म प्रायः लुप्त रूप हो जाता है और धर्म के नाम अनेक पाखंडी उत्पन्न हो जाते हैं, अधर्म

कर्म को ही लोगों धर्म मानने लग जाते हैं और हिंसादि अष्टादश पापों की विशेष वृद्धि होती है. ऐसे हुंडा सर्पिनी रूप कलिकाल के महातम (घोरान्धकार) में भी विरल भव्यात्माओं शास्त्र ज्ञान रूप विद्युत प्रकाश द्वारा प्रायःलुप्त हुवे धर्म को भी ढूंढ कर प्रसिद्धी में लाते हैं वे ही धर्म ढुंढक कहलाये जाते हैं. ऐसे ढूंढकोंही सत्य धर्म को प्राप्त कर सकते हैं (बाकी और सब तो धर्माभास रूप धर्म में ही भ्रमित बने कहो तो अन्योक्ति नहीं गिनी जाय] वह किस प्रकार कर सकते हैं. जिस का प्रदर्श कराने के हेतु से ही मानो यह छोटा सा फेफ्लेट प्रसिद्ध किया गया है. इस लेख में अन्योक्ति बिलकूल ही नहीं समझीये. यह लेख केवल श्रवणिक बातों पर अनुमान करके नहीं लिखा गया हैं परंतु इस में बहुतसी मुख्य २ बातों तो लेखने दृष्टो से दिगदर्शन व अन्तः करण से अनुभव करके ही इस जीवन को अन्य के जीवन रूप जान कर ही लिखने का व अमूल्य प्रसिद्धी में रखने का परिश्रम किया है. इसलिये पाठक गणों इसे दत्तचित्त से पठन कर गुणग्राही बन लेखक का श्रम व प्रकाशक का खर्च सफल कीजीये !

सं० १९७६
जेष्ट प्रतिपदा.

गुण वृद्धिका इच्छक,

मणिलाल.

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

॥ गुलाबी-प्रभा ॥

सती गुलाबबाई का संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त

प्रवेश

इस आर्यावर्त मंडल में आर्य धर्म का विशेष प्रदर्शक मुरधर देश के नागोर शेहर के पास 'डेह' ग्राम में खंडेलवाल—श्रावगी कुलभूषण पाटनी गौत्रज शेठ मोतीलालजी की पत्नी गोलीबाई के कुक्षी से संवत १९३२ में पुत्री का जन्म हुआ जिसका सुन्दराकार शरीर के अनुसार 'गुलाब' नाम स्थापन किया. यह यथा

सम्पत्ति प्रमाणे सुख से बृद्धि पाती हुइ विज्ञान वय को प्राप्त हुई.

मुरधर देश में जैन धर्म का विशेष प्रचार होने से जैन के भिन्न २ गच्छ सम्प्रदाय पंथ के पालक श्रावको की वसति भी विशेष है, तदनुसार जैन साधु मार्गीय धर्म के पालक श्रावको की वसति अच्छी होने से वहां साधु साध्वीयों का आवागमन भी बहुत होता रहता है.

साधुमार्गीय की २२ सम्प्रदाय में महा प्रतापी पूज्य श्री जयमलजी ' महाराज की सम्प्रदाय के पण्डित मुनिवर ' श्रीमगनमलजी ' महाराज का जिस वक्त देह ग्राम पधारना हुआ। उसवक्त उन के पास गुलाब-बाइने सम्यक्त्व धारन की और साध्वीयों की संगति कर सामायिक प्रतिक्रमण कंठाग्र किया, तैसे ही कितनेक छोटे २ स्तवनादि भी कंठाग्र किये.

प्रसंगानुसेत इस बाइ का लग्न सम्बन्ध दक्षिण

हैदराबाद निवासी श्रावगी कुलभूषण चांदूवाड गौत्रज शेठ रामनाथजी के पुत्र जवारमलजी के साथ किया. तदनुसार इसे छोटी वय में ही हैदराबाद आने का प्रसंग प्राप्त हुवा.

कुटुम्ब विनय

पूर्व पुण्य से या सत्संग से इस बाई के अंग में विनय गुनने स्वाभाविक ही निवास किया था. जिस से इसने श्वशूर सासु पति देवर आदि कुटुम्ब की यथोचित भक्ति कर व गृह कार्य में कौशल्यताका वर्ताव कर संतोषित किये. जिस से कुटुम्बादि इस बाई की ओर प्रेमदृष्टि से अवलोकन करते थे. कहा भी है कि-" काम प्यारा है न कि चाम प्यारा ? ".

श्वशूर कुल में इस बाई के आये बाद सास का थोडे ही काल में आयुष्यपूर्ण हो गया. तब बाई के श्वशूरने बाई को गृहभार निर्वाह करने योग्य जानकर भंडार (तीजोरी) की कुंजीयों सुपरद की

तथा इस बाई के प्रथम पुत्र का स्वल्प वय में ही वियोग होने से छोटे देवर सूरजमल को दत्तपुत्र तरीके दे संतोषित की. बाई के और भी चार पुत्र की प्राप्ति हुई थी परंतु कोई भी जीता रहा नहीं.

कुल धर्म

यह बाई मारवाड में तो साधुमार्गीय धर्म की धारक बनी थी परन्तु. हैदराबाद में आये बाद साधु साध्वी के दर्शन के अभाव से कुल धर्मानुसार दिगम्बर जैन धर्म की पालने वाली बनी. और तदनुसार कितना ज्ञान भी कंठाग्र किया.

विद्या भ्यास

जिस वक्त इस के दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई उस वक्त इस के बंदोबस्त के लिये एक ब्राह्मणी रखी गई थी. वह पढी हुई थी उस के पास गुप्तपने कक्का बाराक्षरी विगैरा पढकर कुछ २ वांचन करने लगी, फिर अपने मनमे ही अक्षरोंका सम्बन्ध मिला २

कर पढते २ कुछ काल में अच्छी तरह पढने लिखने लगी. तदनुसार पंचमंगल, आलोचनापाठ, एकीभाव, दश लक्षणी धर्म की ढालों, छढालों, भक्तामरस्तोत्र, और तत्त्वार्थ सूत्र के मूल का भी पठन किया. इस वक्त बाई को वृद्धावस्था वाले दिगम्बर धर्म के एक पंडितजी ने अच्छा सहाय दिया.

साधु समागम

सं० १९६३ के वैशाख में तपस्वीराज श्री केवलऋषिजी महाराज, बालब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी महाराज, विनीत मुनि श्री सुखाऋषिजी महाराज ठाणे ३ ने मार्गातिक्रमण का महा परिषह सहकर नवा क्षेत्र हैदराबाद पावन किया. वे भिक्षार्थ गोशामहेल बाजार में जाते मुशलम जंग के पुलपर से प्रसार हो रहे थे, उस वक्त गुलाबबाई भी नित्य नियमानुसार घासमंडी के दिगम्बर के बडे मंदिर के दर्शन कर पीछी आ रही थी. वहां अचिन्त्य साधु दर्शन से सानन्दाश्चर्य बनी और तत्काल सन्मुख आ नमस्कार कर पूछने लगी. आप

कहां से पधारे, कहा उतरे हो ? महाराजश्रीने कहा हम अवी दक्षिण देश से आये हैं और चार कमान में उतरे हैं. यों सुन बहुत खुशी हुई वंदना नमस्कार कर स्वस्थान गई.

दो प्रहर दिन व्यतीत हुवे कितनीक श्राविकाओं को साथ में ले गुलाबबाई महाराज श्री के दर्शनार्थ आई और वार्तालाप होने अपने धर्म गुरु का नाम दर्शाया. फिर सदैव दर्शनार्थ आने लगी. गौचरी की विनंति की महाराज भिक्षार्थ गये तब अपने गृह से उलट भाव दान का लाभ ले और भी कितनेक श्रावगीयों के घर बताये, उन घरवालों को साधु को दान देनेकी विधि प्रथमही समझा रखने से उन को भी सुपात्र दान का लाभ प्राप्त हुवा. " विवेकेन धर्म वर्धते ".

ज्ञानाभ्यास

चतुर्मास लगे बाद प्रथम का सीखा हुवा सामायिक सूत्र विस्मरण होने से पुनः सीखा. श्रमण सूत्र और अर्थयुक्त प्रतिक्रमण,

पच्चीस बोल का थोक, व्यवहार सम्यक्त्व के सडसट बोल का थोक, लघुदंडक, नव तत्त्व सविस्तार, बडा बांसठीया, छ काया का थोक, गुणस्थान द्वार, कर्म प्रकृतियों का थोक, रूपी अरूपी का, संजतासंजती का यों थोकडे कंठाग्र करते २ शास्त्र पठन की रूची हुई, तब आचारांगजी, दशवैकालिक, सुयगडांगजी, उत्तराध्ययनजी, उपासकदशांग, ज्ञाताधर्म कथा, विपाकजी इतने सूत्र अर्थ युक्त पठन किये. पुच्छिसुणं [सुयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का छठा अध्याय] नमीराय (उत्तराध्ययनजी का ९ वा अध्याय) छजीवनी (दशवैकालिक सूत्र के प्रथम के चार अध्याय) शब्दार्थ युक्त कंठस्थ कर नित्यानियम में स्थापन किये. इस सिवाय और भी छुटक बोल ढालें स्तवन अध्याय का अभ्यास किया.

प्रत्याख्यान ज्ञानकी वृद्धि होने से वैराग्य दशाकी जाग्रति हुई तब जावज्जीव पर्यन्त रात्रि को चारों प्रकार के आहार भोगवने के (चौविहार

का स्कन्ध) सचित्त हरीकाय भक्षण करने के अचित्त हरी भी १२ उपरांत भोगवने के, घर में कच्चा पानी पीने के और एक महिने में ८ रात्रि उपरान्त तथा रात्रि में भी एक वक्त उपरांत तथा दिन को जाव जीव मैथुन सेवन के प्रत्याख्यान किये. संक्षेप में यथा शक्ति बारा व्रत की मर्यादा धारन की. १४ नियम को सदैव धारन करने लगी.

धर्म परीक्षा

अब दिगम्बर और साधुमार्गीय धर्म की तफावत तपासने की उत्कंठा लगी. तब प्रथम तत्त्वार्थ (मोक्ष) सूत्र कंठकर सदैव पाठ कर्त्ती थी. उसे शुद्ध कर शब्दार्थ युक्त कंठ किया, उस पर विशेष प्रकाश डालने नय प्रमाण का २५ द्वार का बडा थोक बहुत ही विस्तार से कंठाग्र किया. जिस से तत्त्वार्थ सूत्र का स्पष्टिकरण हुआ. उस में भी जिस २ स्थान तफावत दृष्टी में आया उस २ स्थान प्रश्नोत्तर कर उस ही में से उस का खुलासा मिलने से हृदय में बहुत सन्तोष प्राप्त हुआ. फिर रत्न करंड

श्रावकाचार सुदुष्ट तरंगिनी, तत्त्वार्थ सूत्रकी वडी वाच- निका, अष्टपाहुड, षड्द्रव्य संग्रह, गोमठ सार के दोनों काण्ड, पद्मपुराण, पार्श्व पुराण, आदिनाथ पुराण, और भगवती आराधना. इन ग्रन्थोंका पठन करते जो २ शंका प्राप्त होती गई. उसका समाधान करती गइ, खूबी यह हुई कि ज्यों ज्यों दिगम्बर आम्नायके शास्त्रोंका पठन करती गई त्यों त्यों साधुमार्गीय धर्म की अधिक २ श्रद्धालु बनती गई. धर्म का सच्चा पालन करनेवाले साधु ही उस के दृष्टीबिन्दू बनगये. दिगम्बरीयों को तो कथन मात्र मानने लगी. उक्त शास्त्रों का पठन करते २ जो २ विशेष दिग्दर्शन करने लायक खूबीयां दृष्टीमें आती गई उन का नोट भी करती गई * और उन का वारंवार पठन करने से वे कंठस्थ हो गए.

---

* बाई ने नोट की हुई खूबीयों का कुछ उल्लेख इस पुस्तक के दूसरे भाग में किया है

धर्म चर्चा

उक्त प्रकार बाई को साधुमार्गीय धर्म की दृढ श्रद्धालु बनी जान कर कितनेक दिगम्बर बाई भाई, बाई के परिणाम साधु मार्गीय धर्म से शिथिल बनाने अनेक प्रयत्न करने लगे. बाई उस का दरकार नहीं करती और जब२ चर्चा का प्रसंग प्राप्त होता और वहां जो प्रतिपक्षी शान्तस्वभावी न्यायपक्षी दीखने में आता तो उन को अपनी नोट की हुई खूबीयों का दिग्दर्शन कराकर उस का उत्तर उन के पास मांगती, कोई उस का विरुद्ध प्रत्युत्तर देता तो कहती की-एक ही पक्ष के आचार्यों में मत भिन्नता है तो अब किसे सत्य मानना ? और जब एक ही पक्ष के आचार्यों में मत भिन्नता है तो फिर अन्य मतावलम्बियों में हो इस में आश्चर्य ही क्या ? मुझे तो सावद्य कथन से निर्वद्य कथन पर और अपने मत प्रमाणे अन्य में कथन व वर्तन मिलता आवे वह अधिक प्रिय है. यों सुन प्रतिपक्षीयों गुम्म बन जाते व कोई वितंडावाद करता तो बाई क्षमा

धारन कर कहती कि जिसे जो रुचेगा उसे वही पचेगा. नाहक जिन वचनों की आच्छादना क्यों करनी चाहिये. यों कह मौनस्थ बन जाती.

जवारमलजी का प्रथम लग्न सम्बन्ध सोलापुर में हुवा था, वह पत्नी थोडे ही काल में मृत्यु पाये बाद गुलाबबाइ इन के घर में आइ थी, और सौत के मावित्र से अपने मावित्र प्रमाने ही सम्बन्ध रखती थी. वे भी बाइ को विनयवंत गुणवंत कार्य दक्ष जान वक्तोवक्त बोलाते थे. सोलापुर में दिगम्बर धर्मावलम्बियां गुजराती हुमड के घर बहुत हैं. उन को भी मालुम पडी की चम्पा बइ(प्रथम की सौत का नाम) ने साधु मार्गीय धर्म स्वीकार किया है. जब बाई सोलापुर गई और दर्शनार्थ मंदिर में गई तब शास्त्र के जान बहुत से श्रावक श्राविकाओं कहने लगे कि-अन्य धर्मियों के पास ज्ञानाभ्यास करने में कुच्छ हरकत नहीं परन्तु अपना धर्म छोडना नहीं चाहिये, बाइने उत्तर दिया कि—मैंने अपना धर्म छोडा नहीं

है परन्तु विशेष विशुद्ध किय है. इतने पर भी जो मेरी श्रद्धा में कुच्छ फरक हो वह मुझे बताइये. यों कह शास्त्रों में से चूंनी हुई खूबीयो का उन को दिगदर्शन कराया, परस्पर विरुद्धता का भेद समझाया, तब वे भी चमत्कार पागये. कुच्छ समाधान नहीं करसके. बाइ के हैदराबाद आये बाद जब २ सोलापुर वाले आते तो बाइ से मिले विना नहीं जाते. बाई उन को भी महाराज श्री के दर्शनार्थ लाती, ज्ञान वृद्धि खाते से छपी हुई पुस्तको सद्धर्मबोध आदि उनको देती. वे भी बाइ के गुणानुवाद करते.

व्यवहार पालन

यद्यपि बाई साधुमार्गीय धर्म की दृढ श्रद्धालु थी तथापि कुल व्यवहार साधने प्रसंगानुपेत दिगम्बर मंदिर में जाती थी. वहां आते हुए पण्डितो श्राविकाओं का यथाउचित्त सत्कार भोजन व्यवहार वगैरा करती. विद्य शाला का, शास्त्रोद्धार का. किसी को सहायता का वगैरा चन्दा होता तो उस में यथा शक्ति द्रव्य प्रदान

करती. परन्तु जैन छोड अन्य-देव-गुरु-धर्म का परिचय बिलकुल नहीं करती किंबहुना–कुलदेव का दशहरा दीपवाली का पूजना धोकदेना वगैरा भी छोड दिया था. सम्यक्त्व के अतिचारों से बहुत बचती थी.

धर्म वृद्धि

अपनी बात मानने वाली बाइयों को मंदिर में होते हुअे कार्यों का दर्शन कराकर शास्त्रानुसार उन का निर्णयकर उन को सत्य धर्म की प्रेमालु बनाइ थी. जो बाइयों जन्म से भी धर्म में नहीं समझती वे भी बाइ की संगती से दृढ धर्मिणी बन अनेक प्रकार धर्माचरण तपश्चरण करने लगी. बहुतसी बाइयोंको सामायिक प्रतिक्रमण थोकडे वगैरा ज्ञानाभ्यास कराकर स्वधर्मिणी बनाली थी. उन के पास भी यथाशक्ति धर्मोद्योत कराती रहती थी. बडे २ श्रीमन्तों के घराने की स्त्रियां भी बाई की ओर मान दृष्टी से प्रेम भाव रखती थी. उन के घरों में जाने का जब २ कारण उपस्थित होता तब २ बाई उन के साथ अन्य वार्तालाप से धर्मा-

लाप वं धर्मकार्य में विशेष समयका व्यय करती. उन को शास्त्र की रहस्य समझाती, पढने का सद्बोध करती, जो पढना चहाति उन को आप धर्म शास्त्रों पुस्तके का जोग बना देती. फुरसत मे कुच्छ वांचन भी कराती सुनाती समजाती, जिस से वे बाइयों भी धर्म प्रेमी बन यथाशक्ति धर्मार्थ द्रव्य प्रदान करती, उस द्रव्य से तथा यथाशक्ति अपने पास का द्रव्य भी उस में मिलाकर 'ज्ञान वृद्धि खाते' में से प्रसिद्ध होती हुई पुस्तकों में से प्रत्येक पुस्तकों की १००-२०० ५००-१००० जैसा मौका देखती उतनीं प्रतों अधिक छपवा अमूल्य दिलाती. जिन २ पुस्तकों पर "गुप्त परमार्थ इच्छक सौभाग्यवती श्राविका बाई" नाम प्रसिद्ध कर्ता छपा है वे सब पुस्तकों, इस ही की तर्फ से प्रसिद्ध हुई जानना. गुलाबबाई के यह बात तो याने आदत में ही पडगइ थी कि किसी के भी साथ वार्तालाप का प्रसंग उपस्थित होता तब धर्मोप- देश तो बात २ में लाया करती. "अयमाउसो! णिग्गंथे

पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे ".

वैराग्य साधुमार्गीय धर्म की दृढश्रद्धालु उग्रतपश्चरण कर्ता गुलाबबाइ की भगिनी गोपीबाइ नागोर वाली कारण वशात हैदराबाद आइ, तब चौले २ पारणा करती थी, उस के प्रसंग से बाई को वैराग्य भाव–दीक्षा लेने की अभिलाषा उद्भवी: परन्तु बाइ के श्वशुर रामनाथजी पौनसो (७५) वर्ष की पुक्त उम्मर को प्राप्त हुवे और आँखों से अपंग थे. उन को देख के व उन का उपकार स्मरण कर के उन की भक्ति में अन्तर डाल उन को दुःखी करना उचित्त नहीं समझकर दीक्षा ग्रहण करनेके भावना मन्द किये और वैराग्य को कायमरख तपश्चर्या में वृद्धि की. बारा महिने तक सदैव एक भक्त भोजन बीच में अनेक बेले तेले आदि तप दो वर्ष तक एकान्तर उपवास, बहुत महिने बेले २ तेले २ पारना, प्रदेशी राजा के

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

तप दि ४० पारणा १६

बेले, और प्रतरतप आदि तपश्चरण करने लगी. तैसे ही दुग्ध दही घृत तेल मिठाइ व निमक इन छही रसों का त्याग भी बहुत महिने से कर भाव से विषय कषाय को और द्रव्य से शरीर को बहुत दुर्बल करदिये.

लेक्चर

जब यहां के श्रीमान् राज्यमान्य धर्म स्थम्भ दानवीर विशुद्ध सम्यक्त्वी राजाबहादुर लालाजी सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी की तरफ से सिकंद्राबाद में ता—१२—१३—१४—अप्रैल १९१३ में श्वे० स्था० जैन कान्फरन्स की पांचवी बैठक हुई थी, उस में स्त्रीयों के बैठने की भी सुभिता की गईथी और चौथे दिन खास महिला परिषद की गइ थी, जिस में जैन महिलाओं सिवाय अन्य अन्य मतावलम्बियों की महिलाओं पारसी की

धातुओं आदि बहुत उपस्थित हुई थी. उस में सुनाने के लिये ' विद्याकी खास हक़दार स्त्रियाँ " इस विषय में लेक्चर तैयार किया था. और वक्तव्य सुनाकर श्रोताओं का मन आकर्षण किया था वह:—

प्रिय धर्मिणी मेरी बहिनो ! श्रेष्ठ कार्य के प्रचारक प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभनाथ भगवान ने विद्या का हक्क खासकर स्त्रीयों को ही दिया. देखीये ! भगवती जी सूत्र की आदि में ही " नमो बंभीए लीविए " लिखा है. इस का अर्थ ऐसा होता है कि—" ब्रह्मीजी (वृषभनाथजी की बडी पुत्री) को लिपी दान के दान को नमस्कार." और इस की विशेष पुष्टि श्री उदयरत्नजी महाराज कृत सोले सतीयों के स्तवन की दूसरी तीसरी गाथा में इस प्रकार की है:—

बाल कुमारी जगहित कारी, ब्राह्मी भरत की बेन कहीए ॥
पढम ने लाधी अक्षर रूपी, मोटी सतीयांमांहि वदीए ॥
बाहुबल भगिनि सती शिरोमणी सुन्दरी नामे वृषभ सुताए ।
अंक स्वरूपी त्रि-भुवन मांहि, जेह अनोपम गुण जुताए ॥

इस का संक्षेपार्थ यह होता है कि-श्री वृषभनाथ भगवान ने अपनी बडी पुत्री ब्राह्मीजी को तो अक्षर [अ. क. प्रमुख] लीपि का और छोटी पुत्री सुन्दरी जी को अंक (१-२-३ प्रमुख) गणित विद्याका प्रदान किया. बस संसार मात्र की सब विद्या का समावेश उक्त दोनों प्रकार की विद्या में होजाता है. यह दोनों विद्या युगादि देवने प्रथम स्त्रीयों को ही बक्सीस की गई है ! इस लिये विद्या की हक्कदार स्त्रियों ही है. परन्तु भोली अबलाओं को विधवा हो जावोगी वगैरा मिथ्याभ्रम में फसाकर पुरुषों ने विद्या रूपी परम धन तो छीन लिया और गृहभार अपने सुपरत कर परतंत्र बनादी. अहो बहीनों ! अब भी सावधान बनो और विचारो कि जो विद्या पठन से स्त्रीयों विधवा हो जाती हो तो पुरुषों के भी स्त्री का वियोग होना चाहिये ? फिर तो विद्या का एक महाविष हो जाय ! परन्तु ऐसा तो कहां होताही नहीं है. बहुत गुजराती वहिनों फारसीयों की, खोजाओं की, तथा मुसलमानों की स्त्रीयों

पढ़ी लिखी सुख सौभाग्य विलसित दृष्टीगत होती है.
इत्यादि विचार से तुमारे मनका मिथ्याभ्रमका निकन्दन
कर विद्याभ्यास कर स्वतंत्र और सुखी बनो!
यह मेरी वीनंती है.

उपहार उक्त महिला परिषद में प्रेसीडेन्ट साहेब आदि कितनेक पुरुषों उपस्थित होने से तथा बाई का सभा में बोलने का प्रथम ही प्रसंग होने से लज्जा वश हो उक्त लेक्चर मन्द २ स्वर से पढ़ागया था तो भी श्रोताओं को रोचक बना और उस की खुशाली में प्रेसीडेन्ट साहेबने बाई को चांदी का चांद बक्षीस किया था. पाठको! उक्त भाषणकी शैली व उस में रहा गुप्त आशय से बाई का विद्या प्रेम व ज्ञानाभ्यास किस प्रकार का था सो आप स्वयं ही अनुमान कर सकते हो.

स्वधर्मी सेवा

बाई का स्वधर्मीयों पर विशेषज्ञों पर बडा ही भक्ति भाव था. महाराज श्री के दर्शनार्थ आते हुवे श्रावक श्राविकाओं को आमंत्रण दे अपने घर भोजन भक्ति करना, जो साता उपजाने योग्य हो उसे यथा उचित द्रव्य से औषधोपचार से, वस्त्र से आप साता उपजाती, अन्य को भी सूचित कर साता उपजाती. तैसे ही हैदराबाद में रहती स्वधर्मिनियों को भी यथा उचित सहाय देती, बीमारों के घर रहकर उनका औषधोपचार पथ्य पानी का बंदोबस्त करना, तपस्विनियों के तेलादि का मालिश, ऊष्ण जल का योग्य प्रतिलेखना वगैरह कर साता उपजाती. सीझती स्वधर्मिनियों को गुप्त द्रव्य से वस्त्र से भोजन सामग्री से साता उपजाती, यों बाई की भक्ति अन्य का भी अनुकरणीय होती थी. इससे बाई अनेकों को मेढी प्रमाने आधारभूत बनी थी.

सन्मान

बाई गांभीर्यादि गुण युक्त व दीर्घदर्शी होने से बहुत स्वजन परजन संसार व्यव-

हार के कामों में तथा धर्म के कामों में सम्मति लेने आते उन को विचार पूर्वक ऐसी सलाह देती कि जिससे आरंभ और खरच कम हो काम अधिक प्रदीप्त बने: इसने अपने गुणों की छाप आडोसी पाडोसीयों रजपूत मुसलमान आदि पर भी ऐसी जमादि थी की वे भी बेअदबी का कोई काम करते चम्प धरते थे और वक्त पर कहना भी कबूल करते थे. अनर्थ काम का बहुत बचाव होता था.

निजाम सरकार के माननीय विश्वासपात्र ठाकर साहेब डोंगरसिंघजी का वेडा बाई के घर के नजीक था. उन के रणवास में भी बाई का गमन था. ठकराणीयों भी बाई की ओर मान दृष्टी से देखती थी. जब बाई को पुत्रवधूने अठाई तप किया था तब अन्तिम उपवास के प्रत्याख्यान के दिन ठाकर साहेब ने बाई को बैठने अपनी बग्गी भेजी थी व रोशाला नगारा निशानसह ठाकर साहेब भी साथ आये थे. प्रथम महाराजजी के पास अठाई के प्रत्याख्यान करा-

कर फिर सब मन्दिरों के दर्शनार्थ ले गई थी. यों स्वधर्मोन्नति का लक्ष बाई को हर वक्त रहता था.

भक्ति विवेक

जब तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी महाराज के शरीर में अशक्ति व व्याधी की बृद्धि अधिक हुइ तब हकीमों डाक्टरों को यथा उचित गुप्त सहायता कर साधु के प्रेमी बनाये थे. तथा स्थानक के नजीक में रहते गृहस्थों को साधु का आचार समझाकर पथ्य पानी का योग्य सुलभता से मिले तैसे किये थे. अन्य गृहो में भोगोपभोग के लिये या औषधोपचार के लिये किसी सचित्त वस्तु को बनाते बाई के जानने में आता तो उस में से वस्तु बचवा कर साधु को औषधि के लियें जोग बनवा देती. यों साधुओं के आचार प्रमाने निर्दोष भक्ति करने में भी विवेक सम्पन्न थी.

ब्रह्मचर्य

जब बाईने पांच वर्ष में पूरा हो वैसे पंच कल्यान का तप धारन किया था तब

पांच वर्ष का ब्रह्मचर्य धारन किया, दो वर्ष हुअे बाद जावज्जीव का ब्रह्मचर्य (शील स्कन्ध) धारन कर धर्म में दत्तचित्त बनी थी.

काल क्रमण

बाइने धर्म ध्यान करने के लिये अपने घर में एक कमरा अलग कर रखा था उसे धर्मिक चित्र की तसवीरों से श्रृंगारा था. २०० पुस्तको का एक कबाट और प्रसिद्ध होती हुइ ज्ञान वृद्धी खाते की पुस्तकों की संदूक भरकर रख थी. बैटके [आसन] पूंजनी माला अनुपूर्वी आदिका संग्रह भी रखा था. सदैव प्रहर रात्र रहे उठकर एक घंटा ध्यान एक घंटा कंठस्थ ज्ञान का परियटन, एक घंटा नित्यनियम दिवसोदय हुअे एक घंटा पठन यों पांच सामायिक पूर्ण कर चूला इंधन बरतन भोजन मामग्री की प्रतिलेखना पानी की यत्ना व यत्ना पूर्वक भोजन तैयार कर कुटुम्ब का व स्वतः के शरीर का पोषन कर दो प्रहर को महाराज श्री के दर्शन कर एक प्रहर पठन मनन चर्चा वगैरा

जिस से वे गुरु सेवा में लोकोत्तर सुधारने में आत्म-हित साधने में उत्साही बन बाई के कथन को रुची से स्वीकारने लगे.

गुणानु राग महाराज श्री अमोलक ऋषिजी शास्त्रोद्धार का कार्य स्वीकार कर सिकंदराबाद में रहे है. यह समाचार बाइ के जानने में आते ही सानन्दाश्चर्य पाई और कहने लगी कि महाराज श्री को ज्ञान प्रचार का इतना जबर प्रेम है कि बहुत वर्षों से उत्पन्न होती विहारकी प्रबल इच्छा को रोक कर ऐसे परमोपकारी कार्य का स्वीकार किया. यों हार्दिक धन्यवाद देने लगी, और शास्त्रोद्धार कार्यका महत्व दर्शाकर बाइयों को ज्ञान की व साधु की गुणानुरागिनी बनाई.

दृढता बाईने निरंतर अत्यन्त दुष्कर तपश्चरण से अपने शरीर को अत्यन्त शुष्क हाड पिंजर बनादिया तो भी तप से अधाइ नहीं और महाराज

श्री का दूसरा चतुर्मास सिकंदराबाद में था तब (२ अठाइ, १३ पचोले, १७ चोले, २३ तेले, ४२ बेले और १२५ उपवास का) 'कर्मचूर' तप का स्वीकार कर प्रथम अठाइ की. उस के सातवे उपवास की रात्री में शीत में आ एकदम बेशुद्ध हो गई. आठवे दिन भी बेशुद्ध पडी रहीं. पारणे के दिन वैद्यों डाक्टरों बोलाये वे सब इस में क्या है, यों कहते हात झटक चलेगये. सब को घडी दो घडी की मेहमान मालूम पडी. पारणे में उकाली पिलाइ परन्तु लीगइ नहीं. यह देख सिरकार के डर से लोगों घबराये तब बाइ के पति और पुत्र कहने लगे कि-कुछ हरकत नहीं ! इस के मन में बहुत दिनों से अठाइ करने की थी वह पारपडगई यह अच्छा हुवा, बाकी जीना मरना किसके हाथ की बात है यह वक्त टाली टलती है क्या? यों कह शिवराजजी सुगने को घोडे गाडी में डालकर बाइ को घर लेगये. और जिन बाइने अरनेबन नियम से प्रथम वाकेफ कर रखा था उन राज्यमान

वयोवृद्ध बालगोविंदजी वैद्य के पास औषधोपचार कराया चौथे दिन बाई शुद्धि में आई. कुछदिनो बाद शारीरिक कुछ सुधारा होते ही अपने पति पुत्र पुत्रवंधू को साथले घोडे गाडी में बैठ बाइ महाराज श्री के दर्शनार्थ सीकंदराबाद आई. और अत्यन्त अशक्त होने परभी पुत्रवधू के सारे से ऊठ बैठ कर यथा विधी बंदना सब साधुओं को अलग२की. फिर वेशुद्धी में लगे दोषों की आलोचना निंदना कर प्रायःश्चित ले शुद्ध बनी. और कहने लगी कि-अब के जो मैं बची हुं. सो फक्त धारन किये कर्म चूर तप को पूर्ण करने ही अब मुझे मृत्यु पर्यंत संसार में रह तप पूर्ण करना है. और अवसरआये मारवाड में जाकर उत्तम सतीयों के पास दीक्षा धारन कर आत्मोद्धार करने की में प्रतिज्ञा धारन करती हुं. इस वक्त बाइ की मुख मुद्रापर वैराग्य भाव का अलौकिक दर्शाव होता था. घर को जाकर साधु का प्रतिक्रमण ४७ दोष वगैरा कंठस्थ किये आरंभत्याग भूमी शयन

केशलोचन अल्पभाषण ज्ञानादि गुन में रमन वगैरा कितनेक साधुओं के कर्तव्यो का समाचरण किया.

धर्म सहाय

सीकेंदराबाद में प्लेग उद्भवने से महाराज श्री हैद्राबाद पधारे तब बाई के स्वसुर बहुत बिमार थे. उनका आयुअन्त नजीक जान महाराज श्री को बोलाकर उन को अठाराही पाप घर के बाहिर जाकर सेवन करने के तथा औषधि और दूध उपरान्त चारों आहार के जावज्जीव प्रत्याख्यान कराये. आलोचना पाठ पद्मावती सुनवाइ. महाराज गये बाद, आप सदा नवकार मंत्र व अपना नित्यनियम उन को श्रवन कराती रही. तीन दिन में उन का आयु पूर्ण हुआ. उन का मोसर वगैरा व्यवहार यथा उचित कर संसार के विशेष प्रपंच से अपनी आत्मा अलग कर मुझे दीक्षा शीघ्र प्राप्त हो ऐसी भावना भाने लगी.

धर्म लाभ महाराज श्री का चौथा चोमासा सीकंदराबाद में था तब बाई मकान लेकर दो महीने वहां रही. तीन काल व्याख्यान श्रवन दुक्कर तप पचोले २ पारने दान पुण्य का बहुत लाभ लिया. श्री देवऋुषिजी के मासखमण के और श्री उदयऋुषिजी के २१ उपवास के पारने पर आपने चारों स्कन्ध पूर्ण धारन किये. साचित्त वस्तु भोगवने के त्याग किये. और बोली-आयुष्य का कुछ भरोसा नहीं हैं. इसलिये चौमासा हुअे बाद मारवाड जाकर दीक्षाले आत्मकल्यान करूंगी.

अन्तिम सुधारा बाई संवत्सरी हुवे बाद हैदराबाद घर गइ, तब भी पचोले २ पारने करती थी क्यों कि कर्मचूर तप में फक्त ४ पचोले एक अठाइ बाकी रही थी. इस वक्त शरीर बहुत ही दुर्बल व अशक्त बन गयाथा. उठती बैठती घबराती थी कोइ वक्त चलते २ लथडाती थी. एक वक्त रासते चलते गिर पडी तब बाइ के पुत्र उठाकर घर को लाये. तब से फिरने के

शक्ति हारगइ. तो भी तप चालू रक्खा. बाइ का घोर तप देख लोगों आश्चर्य चकित बने थे.

कार्तिक वद्य १३ की श्याम को स्थानक का दरोगा लछमैय्या महाराज श्री से कहने लगा कि-गुलाबबाईने सविनय वंदना नमस्कार कर अर्जी की है कि-अब मैं फक्त ३-४ दिन की मेहमान हूं इस लिये मुझे सहाय देंगे तो बडा उपकार होगा. महाराज श्री अमोलक ऋषिजी और श्री देव ऋषिजी ठा० २ चतुर्दशी के प्रातःकाल हैदराबाद बाई के घर को पधारे. बाई महाराज श्री के दर्शन पाते ही हर्षानन्दित बनी. अत्यन्त अशक्त शरीर होने पर. भी भींत के और मनुष्य के सहारे से खडी हो साविनय वंदना की. चक्री आने से तत्काल नीचे बैठ गई. सविनय महाराज श्री को विराजने की विज्ञप्ति की. महाराज आज्ञा लेकर वहां विराजमान हुए और आलोचना समाधिमरण, शांति पाठ वगैरह सुनाया. सो सब स्वस्थ चित्त से ग्रहण कर कहने लगी—मित्ती मे सव्व भूएसु, मेरी माता पिता बोसीरे २, मेरा कोई भी नहीं, मैं भी किसी

की नहीं. कल श्री महावीर स्वामीजी का मोक्ष कल्यान है सो मेरे भी पांचों कल्याण का अन्तिम उपवास होवेगा. आगे कुछ जीने का भरोसा नहीं इस लिये मुझे संथारा करा दीजिये. आज क्षेत्र वगैरह संथारे का अवसर नहीं होने से महाराज श्रीने बाइ को इस कसर से वाहिर जाकर अठारह पाप स्थान सेवन करने के औषधोपचार उपरान्त तीन आहार के तीन दिन के इतने में आयुष्य पूर्ण होवे तो जावज्जीव के प्रत्याख्यान कराये. बाईने जावज्जीव के ही श्रद्धान किये. रु० ६०० ज्ञान खाते के अर्पन किये. और भी त्याग वैराग्य धर्म शास्त्र सम्बन्धी वार्तालाप किया. महाराज श्री उठने लगे तब बोली. जो यह अवसर मुझे संयम में प्राप्त होता तो बहुत ही अच्छा होता. स्पर्शना ऐसी ही आप का मेरे पर बडा जबर उपकार है, मुझे इस ऋण को फेडने का अवसर प्राप्त होवो. अब मुझे अर्हन्त सिद्ध साधु और जैन धर्म का ही शरण है. यों उसने महाराज श्री को सविनय वंदना नमस्कार किया. महाराज श्री

उस ही दिन पुनः सीकंदराबाद आगये. महाराज गये बाद बाई वार्तालाप बन्दकर ज्ञान ध्यान में निमग्न बनी. और समाधी भाव धारन किया. कोई बोलाता तो 'अर्हन्त भगवन्त' यह शब्दोच्चार करती. इस प्रकार कार्तिक शुक्ल एकम की रात्री के एक बजे गुलाबबाई इस अनित्य शरीर को छोडकर स्वर्गवासी बनी. उक्त प्रकार से धर्माराधक स्वल्प भवान्तर में ही मोक्ष गामी होते हैं यह निश्चय है.

उपसंहार

अहो पाठक गणो ! व श्रोतागणो ! उक्त गुलाबी प्रभा के प्रकाश में आप अपना जीवन अवलोकन कर बाई के कुटुम्ब विनय, विद्याभ्यास, साधु समागम, ज्ञानाभ्यास, प्रत्याख्यान, धर्म परीक्षा, धर्म चर्चा, व्यवहार पालन, धर्म वृद्धि, वैराग्य, सत्कार, स्वधर्मी प्रेम, सन्मान, अतिथि-विवेक, ब्रह्मचर्य, कालज्ञान, धर्म प्रेम, गुणानुराग, दृढता, धर्म सहाय,

धर्म लाभ, और अन्तिम सुधारा. इन २२ प्रकरणों में कथित गुणों का अनुकरण कर आत्मोद्धारक बनोगे तो ही इस के पठन, श्रवन व लेखक के श्रम का और प्रकाशक के खर्च का सार्थक हुवा समझा जावेगा.

भाग पहिला समाप्तम्.
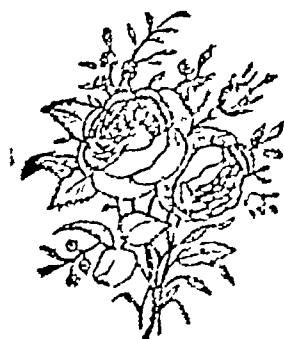
गुलाबी प्रभा-भाग दूसरा

गुलाबबाईने दिगम्बर मत के शास्त्र का अवलोकन कर उस में से सारांश रूप लेख किया था, जिस में का कुछ यहां लिखते हैं.

प्रथम अष्टपाहुड शास्त्र में से

गाथा-दंसण भट्ठा भट्ठा. दंसण भट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं ॥
सिज्झंति चरिय भट्ठा. दंसण भट्ठा ण सिज्झंति ॥ ३ ॥
दंसण पा ३.

अर्थ-दर्शन (सम्यक्त्व) से जो भ्रष्ट हुवा उसे भ्रष्ट ही जानना. क्यों कि शुद्ध श्रद्धावाला कर्म योग चारित्र से कदापि भ्रष्ट भी हो जायगा तो भी वह पुनः शान्ति प्राप्त कर निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करेगा;

परंतु जो सम्यक्त्व भ्रष्ट है वह कदापि सिद्ध नहीं होगा.

गाथा-सम्मत्त णाण दंसण बलवीरिय वड्ढमाण जे सव्वे ॥
कलिकालस्स पावरहिया, वरणाणी होंति अचिरेण ॥८॥

अर्थ-इस कलिकाल [पंचम आरे] में भी जो जीव सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन में बल वीर्य कर वर्धमान परिणामी होवे तो प्रधान ज्ञान [केवल ज्ञान] प्राप्त कर सकता है.

गाथा जो को वि धम्मसीलो. संयम तव णियम जोग गुणधारी ॥
तस्सय दोस कहंता, भग्गा भग्गत्तणंदिति ॥ ९ ॥

अर्थ-जो कोई भी धर्मात्मा सीलवंत संयमी-साधु तपस्वी नियमी-श्रावक इत्यादि गुणधारीयों के दोष कहेगा-निन्दा करेगा वह आप स्वयं भ्रष्ट हो अन्य को भी भ्रष्ट बनावेगा.

गाथा:—जे दंसणे सु भट्ठा, पायेण पडंति दंसण धराणं ॥
ते होंति लल्लमुआ, बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥ १२ ॥

जे वि पडंति चरित्तेसि, जाणंता लज्जा गारव भयेण ॥
तेसिंपि नत्थि बोही, पावं अणुमोय माणाणं ॥१३॥ दंसण०

अर्थ—जो कोई सम्यक्त्वी लज्जा के अभिमान के व भय के भी वश में होकर सम्यक्त्व से भ्रष्ट हुआ है ऐसा उसे जानकर उस के पांव पडेगा, वह उस के पाप की अनुमोदना करने वाला होने से अपने सम्यक्त्व का नाश करेगा और आगामिक काल में लंगडा मुका होगा तथा पुनः उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ होगा.

गाथा—छ द्व्वा णवपयत्था पंचत्थि सत्ततच्च णिद्दिट्ठा ॥
सद्दहइ ताणरूवं, सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥ १७ ॥ दंसण०

अर्थ—धर्मास्ति आदि षद्द्रव्य, अहिंसादि व्रतों, पंचास्तिकाय, जीवादि सात तत्त्व, जिनाज्ञानुसार यथा तथ्य जो श्रद्धान करता है उसे ही सम्यग् दृष्टी कहना.

गाथा—जं सक्कइ तं कीरइ, जं च णसक्केइ तं च सद्दहइ ॥
केवलि जिणहं भणिय, सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

अर्थ—जो जो जिनेन्द्र उपदर्शित भाव अपने जानने में आये हैं, उन में से जो समाचारने की शक्ति हो उने समाचरे, अन्तरायोदय से जो समाचर नहीं सके तो श्रद्धा न करे वही सम्यक्त्वी जानना.

गाथा—सुत्तंमि जाणमाणो, भवस्स विणासणं च जो कुणइ ॥
सूइ जहाअ सुत्तागा, सहि सुत्ते सहाणोवि ॥ ३ ॥
ज्ञान पाहुड ॥

अर्थ—जैसे दोरे युक्त सुचि(सूई) का कचरे में नाश नहीं होता है, तैसे ही श्रुतज्ञानी का संसार में नाश नहीं होता है.

गाथा—उक्किठ सीह चरियं, वहु परिकम्मोय गरुय भारोय ॥
जो विहरइ सच्छंदं, पावं गच्छे दिहवदि मिच्छत्तं ॥ ९ ॥
ज्ञान पाहुड.

अर्थ—जो गुरु के छत्र रहित स्वछन्दाचारी

सिंह तुल्य उत्कृष्ट चारित्र में पराक्रम भी करता हो तो भी वह पापी है दीर्घ संसारी है व मिथ्यात्वी है.

गाथा—लिंगमिय इत्थीणं, थणंतरेणहि कंक्ख देसेसु ॥
भणिओ सुहुमो काओ, तासिं कहा होइ पव्वज्जा ॥ २४ ॥
जइ दंसणेण सुद्धो, उत्तमगोण सो वि संजुत्ता ॥
घोर चरियं चरित्तं, इत्थिसु ण पावया भणिया ॥ २५ ॥

अर्थ—प्रश्न—स्त्री की योनी में, स्तनो के अन्तर में. काक्षाविभाग में, सूक्ष्म काय जीवों की उत्पति कही है तो फिर उसे दीक्षा किस प्रकार प्राप्त होवे ? ॥ २४ ॥ उत्तर—जो स्त्री सम्यक्त्वादि उत्तम गुण संयुक्त है वह विशुद्ध है, वह घोर दुष्कर चारित्र की पालने वाली होने से उसे पापिनी नहीं कहना (यह दोनों गाथा विचारनीय है)

गाथा—सिद्धं जस्स सदत्थं, विसुद्ध झाणस्स णाण जुत्तस्स ॥
सिद्धायदणं सिद्धं, मुणिवर वसहस्स मुणिदत्थं ॥ ७ ॥
बोध पाहुड.

अर्थ—जो मुनिश्वर सिद्ध सर्वार्थीनाथ शुद्ध ध्यान

युक्त मोक्ष प्राप्त करेंगे, उन का शरीर है वही सिद्धायतन है.

गाथा—सुद्धं जो बोहंतो, अप्पाणं चेइयाइ आणं च ॥
पंच महव्वय सुद्धं, णाणमयं जाणं च दिहरं ॥ ७ ॥
बोध पाहुड-

अर्थ—जो मुनिश्वर शुद्ध ज्ञान के धारक, आप परके जान, शुद्ध पंच महाव्रत के पालक शुद्ध ज्ञान मय 'चैत्य' चैतनायुक्त हैं वे ही चैत्य-देहरे जानना. न कि पाषाणादि के.

गाथा—(चेइहरं) सयरा जंगम देहा, दंसण णाणेण सुद्ध चरणाणं ॥
णिग्गंथ वीयराया, जिनमग्गो येरिसा पडिमा ॥ १० ॥
बोध पहुडा.

अर्थ—श्री जिनेश्वर के मार्ग में तो जिनका सम्यक ज्ञान चारित्र युक्त शुद्ध चलता फिरता आत्मा (शरीर) है वही प्रतिमा है. न कि काष्ट पाषाणादि की.

गाथा—दंसण अणंत णाणं, अनंत वीरिय अनंत सुक्खाय ॥
सासय सुक्खप देहा मुक्का कम्मट्ठ बंधेहिं ॥ १२ ॥

णिरुवम मचल मक्खोहा, णिम्मविया जंगमेण रूवेण ॥

सिद्धठाणंमि ठियाओ वोसर पडिमा धुवा सिद्धा ॥ युग्म ॥१३॥

बोध पाहुड

अर्थ-जो अष्ट कर्म रहित अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल, अनन्त सुख, शाश्वत सुखों मे सदैव स्थिरीभूत, निरुपद्रव अचल अक्षय जंगम रूप निर्मित, ऐसे जो सिद्ध स्थान में सिद्ध भगवंत विराज मान हैं वेही धृव (स्थिर) अवस्था वाले सिद्ध ही प्रतिमा है. अर्थात् जंगम प्रतिमा मुनि की और स्थावर प्रतिमा सिद्ध की, इन सिवा और प्रतिमा वंदने जोग नहीं हैं.

गाथा-जिणबिंबं णाणमयं, संयम शुद्ध विगयं च ॥

जं देइ दिक्ख सिक्खा, कम्मक्खय कारणे सुद्धा ॥ १६ ॥

बोध पाहुडा.

अर्थ—जिनेश्वर के पथ में ने जो ज्ञानमय शुद्ध संयमी वीतराग भावी, कर्म क्षयार्थ दीक्षा और शिक्षा के दाता आचार्य हैं वेही जिनेश्वर के बिम्ब हैं.

गाथा-धम्मदया विसुद्धो, पवज्जा सव्वसंग परिचत्ता ॥
देवो ववगयमोहो, उदयकरो भव्व जीवाणं ॥ २५ ॥
बोध पाहुडा

अर्थ-जिनेश्वर के पथ में षटकाय जीवो की दयामय तो निर्मल धर्म है, सर्व संग परित्यागी शुद्ध प्रवर्जा धारक गुरु है, और सर्व मोह रहित देव है. यह तीनों तत्व भव्यों के उदय कर्ता हैं,

गाथा-जं णिम्मलं सुधम्मं, सम्मत्तं संजमं तवं णाणं ॥
तं तित्थं जिणमग्गो. हवेइ ज दीसंति भावेण ॥ २७ ॥
बोध पाहुडा

अर्थ-जिनेश्वर के पथ में जो क्षमादि दश प्रकार का यति धर्म, सम्यक्त्व ज्ञान संयम तप रूप शुद्ध भाव से किया जावे वही तीर्थ है.

चार निक्षेपक.

गाथा—णामे ठवणे हियसं, दव्वे भावेय सगुण पज्जाया ॥

चउणागदि संपदिमं, भावा भवति अरहंत ॥ २८ ॥

बोध पाहुड

अर्थ—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, गुण, पर्याय, चवन गति सम्पदा यह भाव अर्हन्त के कहते हैं.

गाथा—दंसण अणंत णाणे, मोक्ख णणट्ठ कम्म बंधेण ॥
णिरुवय गुणमारूढो, अरहंतो एरिसो होइ ॥ २९ ॥
जर वाही जम्म मरणं च, गइ गमणं च पुण पावं च ॥
हेतूण दोस कम्मेहु, णाणसयं च अरहंतो ॥ ३० ॥

बोध पाहुड.

अर्थ—जो कर्मरूप बन्धन से मुक्त होकर अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन रूप निजगुणों के धारक, जरा व्याधि मृत्यु गति गमन पुण्य पाप इन दोषों का घात कर ज्ञानमय हैं वे ही अर्हन्त * हैं

* इस गाथा के [illegible]

गाथा—गुणठाण मग्गणेहिए, पज्जत्तीयाण जीवठाणेहि ॥
ठवणा पंच विहाहिं, पणयव्वा अरुह पुरिसस्स ॥ ३१ ॥
तेरहमे गुणठाणे, संजोय केवली होइ अरिहंतो ॥
चउतीस अइसय, गुण हुंतीहु तस्सठ पडिहारा ॥ ३२ ॥
गइ इंदिए च काय, जोए वेय कसाय णाणेय ॥
संजम दंसण लेसा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे॥३३॥
आहारोय सरीरो इंदियमण आणपाण भासाय ॥
पज्जत्ति गुण समिद्धो, उत्तम देवो हवइ अरुहो ॥ ३४ ॥
पंचावि इंदिय पाण, मण वचि काएण तिण्णि बलपाणा ॥
आणपाणप्पाणा आउग पाणेण हुंति दह पाणा ॥ ३५ ॥
मणुय भवे पंचिंदिय, जीवठाण सु होई चउदसमे ॥
एद गुण गण जुत्तो, गुण मारूढो हवइ अरुहो ॥ ३६ ॥

अर्थ—अर्हन्त की स्थापना पांच प्रकार की तद्यथा- १ गुण स्थान, २ मार्गणा, ३ पर्याप्त, ४ प्राण, और ५ जीव स्थान ॥ ३१ ॥ इस में जो तेरवे गुण स्थान में स्थिर सयोगी केवली चौतीस अतिशय अष्ट प्रातिहार्य युक्त, जो केवल ज्ञानी अर्हन्त हैं सो प्रथम स्थापना * ॥ ३२ ॥ १ मनुष्यगति, २ पंचेन्द्रिय

* इन गाथा के अर्थ से काष्ट पाषाण की प्रतिमा की स्थापना को अशुद्ध स्थापना लिखी है.

जाति. ३ त्रसकाय, ४ शुद्ध त्रिजोग. ५ अवेदी, ६ अकषायी. ७ केवल ज्ञानी, ८ यथाख्यात संयमी, ९ केवल दर्शनी १० शुक्ल लेशी, ११ भव्यात्म, १२ क्षायिक सम्यक्त्वी, १३ नो संज्ञासंज्ञी, और १४ आहारिक. यह अर्हन्त की १४ मार्गणा ॥३३॥ १ आहार, २ शरीर, ३ इन्द्रिय. ४ मन. ५ श्वासोश्वास और ६ भाषा. इन ६ पर्याय स पर्याप्त अर्हन्त ॥ ३४ ॥ ५ पांच इन्द्रिय के, ३ तीन योग के, एवं ८-९ श्वासोश्वास और १० आयुष्य. इन १० प्राणों युक्त अर्हन्त ॥ ३५ ॥ १ मनुष्य भव. २ पंचेन्द्रिय, ३ चउदहवा गुण स्थान. इन गुणों युक्त सो स्थापना अर्हन्त (यह पांचों प्रकारके स्थापना अर्हन्त) ॥३६॥

अर्थ-जरा व्याधि के दुःख रहित, आहार निहार वर्जित निर्मल श्लेएम खेंकार स्वदोाद दुर्गंछनीक वस्तु रहित शरीर के धारक, प्राण पार्याय युक्त एक हजार अष्ट उत्तम लक्षण के धारक, गौके दुग्धसमान श्वेत मास, सर्वोत्तम सुगंधी शरीर वाले, अतिशयवन्त. यह अर्हन्त महा पुरुष का द्रव्य निक्षेप.॥ ३६-३९ ॥

गाथा-मयराग दोस रहिओ, कसायमल वज्जिओय सुविसुद्धो ॥
त्रित्त परिणाम रहिदो, केवली भाव मुणेयव्वो ॥ ४० ॥

अर्थ- मद राग द्वेप कषाय इन मलो से वर्जित अत्यन्त विशुद्ध परिणामी केवली भगवंत सो भाव अर्हन्त॥यह अर्हन्त के ४ निक्षेप चौथे बोध पाहुड में कहे हैं

गाथा—दव्वेण सयलणग्गा, णरय तिरियाय सयल संघाय ॥
परिणामेण असुद्धा, भाव समणताणं पत्ता ॥ ६७ ॥
णग्गो पावइ दुक्खं, णग्गो ससार सायरे भमई ॥
णग्गो ण लहइ बोहिं, जिण भावणं वज्जिओ सुइरं ॥ ६८ ॥

भाव पाहुड

अर्थ—द्रव्य से तो नरक तिर्यच के जीवो सदैव

नग्न ही रहते है परन्तु भाव की विशुद्धी विना वे संसार के पार नहीं होते हैं, इस लिये जिनेन्द्र प्रणित धर्म रहित जो जीवों हैं वे नग्न रह कर भी दुःख पाते हैं, संसार में भ्रमण करते हैं, और उन को सम्यक्त्व प्राप्त भी नहीं होता है.

गाथा—अप्पा अप्पमिरओ, रायादिसु सयल दोस परिचत्तो ॥
संसार तरणहं, धम्मोति जिणेहिं दिट्ठं ॥ ८५ ॥
भाव पाहुड.

अर्थ—राग द्वेषादि सर्व दोषों का परित्याग कर अपना आत्मा के निजगुण [ज्ञानादि] में रमण करे, संसार से पार होने का यही धर्म जिनेन्द्रने कहा है.

गाथा—कंद मूलं बीयं पुप्फं. पत्तादि किंचि सचित्तं ॥
असिऊण माणमव्वे. भमिओसि अणंत संसारे ॥ १०३ ॥
भाव पाहुड.

अर्थ—कन्दमूल बीज फूल पान इत्यादि सचित्त वस्तु का जो किंचिन्मात्र भी आस्वादन (भोग) करता है वह अनन्त संसार में भ्रमण करता है. (नो

पूजाने चडाने का क्या फल ?)

गाथा–णाणी सिव परमेट्ठी, सव्वण्हू विण्हु चउमुहो बुद्धो ॥
अप्पोविय परमप्पो, कम्म विमुक्कोय होई फुडे ॥ १५१ ॥
भाव पाहुड.

अर्थ–ज्ञानी, शिव, परमेष्टी, सर्वज्ञ, विष्णु, ब्रह्मा, बुद्ध, आत्मा, परमात्मा व निष्कर्म. यह सब जिनके नाम हैं.

गाथा–परदव्व दोग्गइ, सद्दव्वो होमि सुग्गइ होइ ॥
इमाणाऊण सद्दव्ये, कुणहव्व रइ विरयं इयरम्मि ॥१६॥
आदसहावदणं, सचित्ताचित्त मिसियं हवइ ॥
तंपरदव्व भणिय, अवियत्थं सव्व दरिसिहि ॥१७॥
मोक्ष पाहुड.

अर्थ–सर्वज्ञने कहा है कि आत्म स्वभाव को छोडकर और सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य हैं वे सब परद्रव्य हैं. परद्रव्य की रमणता दुर्गति का दाता है और स्वद्रव्य (आत्म गुणां) की रमणता सुगति का दाता है. ऐसा जान परद्रव्य से विरमित हो स्वद्रव्य में रमण करो.

गाथा-हिंसा रहिए धम्मे, अट्ठारह दोस वि वज्जिओ देवे ॥
निर्गंथ पव्वयणे, सद्दणो हवइ सम्मत्तं ॥ १० ॥
मोक्ष पाहुड.

अर्थ-षट्काय की दया सो ही धर्म, अठारह दोष रहित सो ही देव और निग्रन्थ के प्रवचन, इन तीनों का श्रद्धान करना सो ही सम्यकत्व है.

गाथा-धम्मेण होइ लिंगेणं जिनवत्तेण धम्म संपत्ति ॥
जाणेहि भाव धम्मं, कतो लिंगेण कायव्वो ॥ २ ॥
लिंग पाहुड.

अर्थ-धर्म सहित लिंग शोभता है, परन्तु लिंग (भेष) मात्र से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है, जिन्होंने भाव धर्म जान लिया है. उन को लिंग से क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ नहीं.

सुदृष्टि तरंगणी शास्त्र में से

[illegible] ॥

तो सुरनर खग पुज्जए, को विसमय धम्मसेय धम्मकज्जो॥६२॥
परिच्छेद २१.

अर्थ—आत्म धर्माराधन के प्रभाव से अचैतन्य आकाश भी भक्ति करता है तो देव मनुष्य विद्याधर उन की भक्ति करे उस मे आश्चर्य ही कोन सा ? अर्थात् कुछ नहीं.

गाथा-धम्मी धम्मफल हेतवे, जाचिक उदराय अधम्म लोभादि॥
परंजणाय भंडाय, णिलज्ज हासि जोड व कत्ताय ॥ ६४ ॥
परिच्छेद २२

अर्थ—धर्मी धर्म प्राप्ति के लिये. याचक उदर पूर्णार्थ, अधर्मी लोभार्थ, भांड अन्य का मन खुशी करने और निर्लज्ज हास्य के लिये जोड कला करते हैं.

गाथा—सुक पठती बक ध्याणे. खर भसमी पसु णगण तरु कट्ठे॥
करण सिपखं च मुण्डय, भाव सुद्धि विण ण सिज्झंति॥६५॥
परिच्छेद २३

अर्थ—तोता पठन करता है, बुगला ध्यान करता है, गर्धव भस्मी लगाता है, पशु नग्न रहता है, वृक्ष खडा २ सूक जाता है, भेड मुन्डन कराता है, परन्तु भाव शुद्ध बिना कुछ सिद्धी नहीं है,

गाथा—जाई लोय धम्म मुढय मुढोमण काय वयण विवहारो ॥
सपरीय विवरीयो. मिच्छा दीठि होय सया जीवो ॥८६॥
परि० २६.

अर्थ-१जाति-मुढ,२लोकमुढ, ३धर्ममुढ, ४मनमुढ.५ काया मुढ.६ वचनमुढ.और७व्यवहारमुढ.यों सात प्रकार से मुढ बने जीवों विपरित क्रिया करते हैं वे सदैव मिथ्यात्वी हैं.

गाथा—धम्मकप्प फल अवगंत मुष्यो,मोफल दायक दुहनकं ॥
धम्म कालग अंग करयो,कुगय फलंदय सोय किषाये ९०।
परि० २६

अर्थ—जो धर्म रूप कल्पवृक्ष अक्षय मोक्ष के सुख दाता है उस को ही जीवों धर्म के नाम से पापाचरण कर दुर्गति के दुःखका देने वाला कर देते हैं. अहो सेदाश्चर्य!

गाथा—जीय सुःखह सुह मोक्खो मोक्खो तथ रयण गुणाणाहा॥
गुणाण तण तणआहारो,भोयण सावयगेह कार होइ ९२
परिच्छेद. २३.

अर्थ—जीव को सुख की इच्छा है वे अक्षय सुख मोक्ष में हैं, मोक्ष प्राप्ति तीन रत्नों के आराधन से होता है, त्रीरत्न की आराधना मुनि के शरीर से होती है, वह शरीर आहार से रहता है. और आहार की प्राप्ति श्रावकों के घर से होती है. इसलिये मोक्ष सुख के साधन में सहायक श्रावक हैं.

गाथा—सुत्तसुणी पथणवयागो. ण धम्मो णग सांत रमपाणो ॥
तओपथम कि कज्जओ,वाइस इव धुणिथओ पलाशो॥९९॥

अर्थ—सूत्र सुने भी पढे भी परन्तु वैराग्य धर्म शान्त रसजिन के हृदय में नहीं है तो उन का वह पठन श्रवन कागा की धनी समान निकम्मा केवलकष्ट रूप है.

गाथा—निप्पणाणजनण वंचय, वंचय सयणण जणइ लोग पित्तो॥
तणदे तणणइ दाणो,धम्म रहिअमित्य कायर्जो को॥१००॥
परिच्छेद, १६.

अर्थ—जो कृपण मनुष्य हैं वे अपने शरीर को ठगते हैं तैसे ही माता को पिता को स्त्री को मित्र को इत्यादि सज्जनों को भी ठगते हैं. वे शरीर देदेते हैं परंतु तृण मात्र दान नहीं देते हैं. ऐसे कृपण जन जगत में जिन्दे ही मृत्युक समान हैं.

गाथा-भिक्खा कय घर [illegible] बोहे, भो सत पुरिसा! दिह धणदाणं ॥
[illegible] दिए मम जोसो, लहुवण वार वार जाचंती ॥१०१॥

परिच्छेद, २६.

अर्थ—भिक्षुको घरोघर फिर कर बोध करते हैं कि अहो सत्पुरुषों! तुम धनको दानमें देवो, देखो हमारे को कि हमने तुम जैसे हो कर दान नहीं दिया तो अब घरोघर भीख मांगते फिरते हैं ?

गाथा-पय न [illegible] पवमो जल मय घी घाणं होइ तुव खंडाय॥
[illegible] पाविमित्र [illegible] जीव [illegible] गुण [illegible] ॥१०[illegible]॥

परिच्छेद, २[illegible]

अर्थ—पानी में अग्नि, पृथवीपर पद्मकमल, पानी

के मथन से घृत, तुष (फोतरे) के कूटने से धान्य, सूर्य से शीतलता और चन्द्र से उष्णता जो हो, तो जीव हिंसा में पुण्य हो अर्थात् उक्त काम कभी नहीं होते हैं तैसे हिंसासे पुण्य भी कभी नहीं होता है (ऐसी और भी बहुत गाथा इस आगे है.)

गाथा—दीघ थिति भूयसो, गदग्हतण भोय इच्छ सहु होइ ॥
सुर चक्की सुह सह लहय करूणा फल होय णमोग ॥१२२॥
पारिच्छेद ३०

अर्थ—दीर्घ आयुष्य, पृथवी में यशः, रोग रहित शरीर, इच्छित भोगों की प्राप्ति देवता और चक्रवर्ती के सुख यह सब निश्चय से करूणा (दया) के फल हैं,

---

गोमट सार मे से

गाथा—उदयेह, अपुण स्सय, सग पज्जतियं णाणिट्ठवादी ॥
अंचोमुहुत्तमरणं, लद्दि अपज्जत्तगो सोइ ॥ १२१ ॥
अध्याय ५,

अर्थ—जो जीवों उत्पन्न हो पूर्ण ता को प्राप्त नहीं हुअे अर्थात् अपनी २ जो जो ४—५—६ पर्या हैं उन का पूर्ण बन्ध नहीं किया अंतर्मुहूर्त के अन्दर हैं। जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं अर्थात् उश्वास के १८वे भाग में जो मृत्य पावे सो अनिष्पन्न जावों लब्ध पर्याप्त कहे जाते हैं.

गाथा—तिणसया छत्तीसा. छावट्ठि सहस्स गणिसरणानि ॥
अंतो मुहुत कालो. ताव दिया चेव खुडुम वा ॥ १२२ ॥
अध्या० ५

अर्थ—जो अन्तर मुहुर्त में ६६३३६ भव करे उसे खुडाग (सब से छोटा) भव कहते हैं.●

गाथा—गुढ सिर संधिपव्वं. समभंग महीरुयं पाछिन्नं ॥
साहारणं सरीरं, तव्विवरियं प्रत्येयं ॥ १८६ ॥
अ० पाद ●,

अर्थ—जिम वनस्पति की शिरा—नशो गांठे गुप्त हो

● [illegible] ६५५३६ [illegible] मुहूर्त में [illegible]

गाथा— जाणइ तिकाल विसए, दव्वगुण पज्जएय बहुभेदे ॥
पच्चक्खं परोक्खं, अणेण णाणत्तिणंवेति ॥ २९८ ॥
अध्याय १२.

अर्थ—जो त्रिकाल के द्रव्य गुण पर्याय के बहु भेदों प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण व स्याद्वाद मत से स्वरूप का कथन प्रकाश करे उसे ज्ञान कहना.

गाथा-विसजंत कुड पंजर, बंधादिसु विणुवए स करणेण ॥
जा खलु पवट्ठ एम, इमइ अणाणंत्तिणंवेति ॥ ३०२ ॥
अध्याय १२.

अर्थ—जो विष का यंत्र (मंचे) का कुटफास का पिंजरे का बंध बन्धनादि का कथन करे उसे अज्ञान कहना(यह दयमय सुशास्त्र और हिंसामय कुशास्त्र का भेद जानना) इति जीव कांड.

गाथा—आलसद्धो निरुच्छाहो. फलं किंचिण भुजंदे ॥
थणं खिरादि पाणं वा, पउरुसेण विणाणदि ॥ ७९ ॥
कर्म काण्ड.

अर्थ—जैसे विना पुरुषात्कार किये (विना चूंमे) स्थन में से दूध नहीं आता है, तैसे आलसी निरुत्सा ही जीवों कुछ भी फल प्राप्त नहीं करसकते हैं.

गाथा—संयोगमेवेति वदंति. तण्णाणेगचक्केण रहोपयादि ॥
अंधोय पंगूयवणं पविट्ठा तं संपजुत्ताण णयरं पविट्ठा॥८०॥
कर्म काण्ड.

अर्थ—जैसे दो चक्र से युक्त रथ चलता है और जिस प्रकार अन्ध तथा पंगु दोनों पुरुष मिलकर नगर को प्राप्त किया, तैसे ही जैनमत ज्ञान और क्रिया दोनों युक्त होने से मोक्ष नगर प्राप्त करता है.

गाथा—जावदिया वयणवहा, तावदिया चेव होंति णयवादा ॥
जावदिया णयवादा, तावदिया होंति परसमया ॥ ८१ ॥

अर्थ—जहां तक वचन से नयवाद का कथन करे तहां तक स्वसमय [जैनमत] और नयवाद रहित जो कथन है वह परसमय (अन्य मत) जानना.

गाथा— सुहदुक्खं च णाणं, दोणिवि सरिसाणि होंति वोहादा ॥

सुदणाणं तु परोक्खं. पच्चक्ख केवल णाणं ॥ ३६८ ॥
कर्मकांड.

अर्थ—श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों तुल्यही हैं. फरक इतनाही है कि श्रुतज्ञान तो परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है. अर्थात् केवल ज्ञान में देखे हुए पदार्थ श्रुतज्ञान कर जान जाते हैं.

गाथा—आयारे सुयगडे. ठाणे समवाय ठाणगे ॥
अंगोतत्तो विवाय, पण्णत्ताए णाहस्स धम्मकहा ॥३५७॥
तो वासय अज्झयणे. अंतगडे यणत्तरोववाइ ॥
सो पण्हाणं वायरणे, विवाय सुत्तेय पदसंक्खा ॥ ३५८ ॥

अर्थ—१ आचारांग, २ सुयगडांग, ३ ठाणांग, ४ समवायंग, ५ विवहापण्णति, ६ ज्ञाताधर्मकथा, ७ उपाशकदशा, ८ अंतगड ९ अणुत्तरोववाइ, १० प्रश्नव्याकरणजी, और १२ विपाक. यह ११ आगम सूत्र जानना. (यही श्वेताम्बरीयों के माननीय हैं)

भगवती आराधना में से

गाथा—दंसण माराहंतेण, णाण माराहियं हवे णियमा ॥
णाण आराहंतेण, दंसण होइ भयणिज्जं ॥ ४ ॥

अर्थ-दर्शन [सम्यक्त्व] का आराधक तो ज्ञान का आराधक निश्चय से होता है और ज्ञान का आराधक दर्शन का आराधक होने की भजना है [होय भी नहीं भी होय] ॥ ६ ॥

गाथा—संजम माराहंतेण, तवं आराहियं हवे नियमा ॥
आराहंतेण तवं, चरित्त होइ भयणिज्जं ॥ ७ ॥

अर्थ—संयम (चारित्र) का आराधक तो तप का आराधक निश्चय से होता है और तप का आराधक संयम का आराधक होने की भजना है (होय भी नहीं भी होय) ॥ ८ ॥

गाथा—जम्हा चरित्ताराहणाए आराहियं हवेइ सव्वं ॥
आराहणाए सेसा. चारित्ताराहणा भज्जा ॥ ८ ॥

अर्थ—अथवा चारित्र का आराधक होने से ज्ञान दर्शन चारित्र इन तीनो का ही आराधक होता है और शेष तीन के आराधक होने वाले को चारित्र आराधना की भजना है ८ ॥

गाथा—सम्मादिट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहइ ॥
सद्दहइ असं भावं अजाणमाणो गुरु णियोगा ॥ ३२ ॥
सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ॥
सो चेव हवदि मिच्छा-दिट्ठी जीवा तओ पहुदि ॥ ३३ ॥

अर्थ—सम्यक् दृष्टी जीव को कदापि विशेष ज्ञान न हो तो अपने गुरुने जैसा सूत्र उपदेशा वैसा श्रद्धान करे. जो कदापि सम्यक दृष्टी गुरु के उपदेशे सूत्रार्थ का हठग्राही व अभिमानी बन श्रद्धान नहीं करे तो वह जीव उस से ही मिथ्या दृष्टी होजाता है ॥ ३२-३३॥

गाथा—सुत्तं गणहरकहियं, तहेव पत्तेय बुद्धि कहियं च ॥
सुद केवलिणा कहियं, अभिण्ण दस पुव्वि कहियं च॥ ३४॥

अर्थ—श्री गणधर महाराज, प्रत्येक बुद्धि निग्रन्थ केवली और अभिन्न दश पूर्व ज्ञान के धारक, यह चार ही सुत्र कार होते हैं. इन सिवाय अन्य के रचे (बनाये) सूत्र नहीं माने जाते हैं परन्तु पूर्ण अप्रमाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं(दिगम्बर मतवले तो सास्त्रों पीछे से आचार्य के बनाये हुअे ही मानते हैं.) ॥३४॥

गाथा—गिहिदत्थो संविग्गो, वत्थुवदेसेण संकणिज्जो हु ॥
सो चेव मंदधम्मो, अत्थुवदेसम्मि भयणिज्जो ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो ग्रहितार्थ हो अर्थात् आत्मर्थ को प्रमाण नयकर, गुरू परम्परा कर, शब्द ब्रह्म का सेवन कर, स्वानभव प्रत्यक्ष कर सम्यक् प्रकार सत्यार्थ को ग्रहण किया हो, और वह संसार देह भोग से विरक्त हो वही सम्यग ज्ञानी शास्त्र उपदेश में शंका करने योग्य नहीं है. अर्थात्—उक्त गुण युक्त ही सत्यावक्ता-उपदेशक होता है ॥ ३५ ॥

गाथा—पद मक्खरं च एकंपि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं ॥
सेसं रोचंतो वि हु, मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिनेन्द्र प्रणित सूत्र का एकपद एक अक्षर मात्र ही का श्रद्धान नहीं करे तो उसे मिथ्यादृष्टी जानना ॥ ३९ ॥

गाथा—उक्कसा केवलिणा.मज्झिमिया सेस सनदिट्ठीणं ॥
अविरद सम्माइट्ठीस्स. सकिलट्ठस्स हु जहण्णा ॥ ५२ ॥

अर्थ—सम्यक्त्व की उत्कृष्ट आराधना तो केवल ज्ञानी के ही होता है, बाकी अन्य साधु श्रावक के मध्यम आराधाना होती है और संक्लेश युक्त अविरती सम्यक दृष्टी के जघन्य आराधन होती है ॥ ५२ ॥

गाथा— वेमाणिय णरलोए. सत्तट्ठ भवेसु सुक्खमणुभूय ॥
सम्मत्तमणु सरंता,करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥ ५३ ॥

अर्थ—ऐसे वन्त सम्यक्त्वी जीव वैमानिक देव के और मनुष्य के सात आठ भव सुख सुख से करके फिर सब दुःख का अन्तःकर मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ५३ ॥

अर्थ—अपवाद लिंग को प्राप्त हुवा भी अपनी शक्ति का गोपन नहीं करता निन्दना ग्रहणा युक्त परिग्रह को त्यागता हुआ शुद्धता को प्राप्त होता है ॥ ८९॥

गाथा—जह २ सुद मोगाहादि अदिसयरस पसरम सद पुब्वंतु ॥
तह २ पल्हादि ज्जादि, णवणव संवेग सद्धाए ॥ १०७ ॥

अर्थ जीव जैसे २ श्रुत ज्ञान का अवगाह करता—अभ्यास करता है, तैसे २ नवीन २ धर्मानुरागरूप संवेगकर श्रद्धाकर अनन्दको प्राप्त होता है ॥ १०७॥

गाथा जं अण्णाणी कम्मं, खवेदि भव सय सहस्स कोटि हि ॥
तंणाणी तिहिं गुत्तो. खवइ अतो मुहुत्तेणं ॥ ११० ॥

अर्थ—सम्यग् ज्ञान रहित अज्ञानी जिन कर्मों को लक्खों भव में तपाश्चरण कर क्षय करता है, उतने ही कर्मों को सम्यग् ज्ञानी तीनो गुप्ति गुप्तवना अन्तर मूहुत मात्र में क्षय करता है ॥११०॥

गाथा—छट्ठट्ठम दसम. दुवालसेहिं अण्णाणी यस्स जा सोंधी ॥
तत्तो बहु गुण दारेया होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स॥११५॥

अर्थ—अज्ञानी के वेला तेला चौला पचोलादि तप कर जो शुद्धता होती है. उस से भी बहुत गुनी अधिक सम्यक् ज्ञानी के भोजन कर के ही शुद्धता होती है ॥ १११ ॥

गाथा—आद पास मुद्धारो, आणगा वच्छल्लदीवणा भत्ती ॥
होदि परदेसगचे, अव्वोच्छित्तीय तित्थस्स ॥११४॥

अर्थ—भव्य जनोंको सत्य धर्म का उपदेश देने से आप को तथा श्रोता जनों को संसार से भय भीतता प्राप्त हो परम धर्म में प्रवृति होती हैं, जिस से संसार परिभ्रमण का अभाव होता है. इसलिये आप का और परका उद्धार जिन वचनोंके उपदेशसे ही होता है ११४

गाथा-विणओ मोक्खद्दारं विणयादो संजमो तवो णाणं ॥
विणयेणाराहिज्जइ, आयरिओ सव्व संघोय ॥ १३४ ॥

अर्थ—विनय-मोक्ष का द्वार है, विनय से ही संयम तप ज्ञान की सुप्त होता है. और विनय से ही आचार्यादि सर्व संघ का आराधन होता है. इत्यादि

कारण से विनय ही धर्म का मूल है ॥ १३४ ॥

गाथा-पिय धम्म वज्जभीरू सुतत्थ विसरदे असठ भावो ॥
संविग्गा देसियरं साधू णियद विहरमाणो ॥ १५० ॥

अर्थ—दस लक्षण धर्म जिन को प्रिय है, जो पाप से अत्यन्त भय भीत है, सूत्र अर्थ में प्रवीन है, और शठता कर रहित है; ऐसे साधु अनेक देशों में सदैव काल विहार करते हो नाना देशों के प्राणियों को जिन प्रणीत परम धर्म में प्रीतिवंत करते हैं ॥१५०॥

गाथा-उमग्गा देसणो-णाण दूसागो मग्ग विप्पडि वणोय ॥
मोहणय मोहितो. सम्मोहं भावाणं कुणइ ॥ १८२ ॥

अर्थ—जो उन्मार्ग का उपदेशक हो, सम्यग ज्ञान को दूषण लगाने वाला हो, सम्यग् मार्ग जो—सम्यग् ज्ञान—दर्शन—चारित्र इस से विरुद्ध प्रवर्तने वाला हो, मिथ्या ज्ञान कर मोहित हो, जिस को स्वरूप पररूप का ज्ञान नहीं हो सो सम्मोही भावना को कर्ता है,

(इस गाथा का विशेषार्थ इस प्रकार किया है) जो ऐसा उपदेश कर जीवों को वह बहकावे कि-तत्वज्ञ हिंसा करते हुवे भी पाप से लिप्त नहीं होते हैं, देवगुरु के निमित्त की हुई हिंसा भी पाप से लिप्त नहीं करती है. यज्ञ में की हुई हिंसा स्वर्ग को प्राप्त करती है. मन्त्रादि से मरे हुवे जीवों स्वर्ग में जाते हैं. गुरुआदि की आज्ञा से हिंसादि करना सो भी धर्म है. ऐसे खोटे मार्ग के उपदेशक सत्यार्थ ज्ञान को दोषण लगाने वाले होते हैं. रत्नत्रय रूप धर्म से वैर विरोध करने वाले होते हैं, अज्ञान भाव सहित होते हैं वे नीच जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं. (हिंसा धर्मियों को यह गाथा बहुत ही विचारणीय है ।) भगवती आराधना के पत्र ११० के दूसरे पृष्ठ की १२वीं पंक्ति से लिखा है कि-तिलक के प्रक्षालने का जल, चांवल धोवन का जल, जो जल तप्त हो कर शीतलरूप हो सो तथा चणा के धोवन का जल,

तुष धोवने का जल, हरडे का चूर्ण मिला हो ऐसा जो जल आपके वर्ण गंध नहीं पलटा हो सो अप्रणित दोष सहित है अरजो वर्ण गंध रस इत्यादि जामे पलटा गया हो सो प्रणित है. साधु के लेने योग्य है. (यह कथन धोवन पानी के निषेधक को वीचारणीय है.)

पत्र ११४ का पृष्ट प्रथम की पंक्ति १ से—बहुरी प्रासक शुद्धहु भोजन साधुके निमित किया हो सो द्रव्यसे ही अशुद्ध है, साधु को ग्रहण करने योग्य नहीं. (साधु के लिये आहार बनाने वालों को तथा अपने निमित बना आहार ग्रहन करन वाले साधु को यह कथन विचारणीय है)

गाथा—जं वत्थु मोतव्वं जं पाहि उप्पज्जइ कसायग्गी ॥
तं वत्थु भज्जिए ज्जो जत्थोंवसमो कसायाणं ॥ २६० ॥

अर्थ—जिस वस्तु से कषाय अग्नि उत्पन्न हो सो

त्याग करने योग्य है और जिस वस्तु से कषाय अग्नि का उपशम होता हो सो भजने योग्य आदरने योग्य है ॥ २६७ ॥

गाथा–पिंड उवधिं सेज्जं उग्गम उप्पादणेसणादी हिं ॥
चारित्त रक्खणट्ठं, सोधिंतो होदि सु चारित्तो ॥ २९३ ॥

अर्थ–आहार उपकरण और शय्या (स्थानक) इन को १६ उद्गमन के १६ उत्पादन के १०. एषणा के इत्यादि दोष रहित चारित्र की रक्षा के निमित्त शुद्ध ग्रहण करता जो साधु है सो सुंदर-निर्दोष चारित्र का धारक होता है. (इस के आगे ४२ दोषों का बहुत विस्तारसे अच्छा कथन किया है.)

गाथा-कुल गाम णयर रज्जं, पयहिय तेसु कुणइ ममत्तिं जो ॥
सो णवरि लिंग धारी, संजम सारेण णिस्सारो ॥ २९८ ॥

अर्थ-जो कुल ग्राम नगर को छोड कर साधु हो फिर कुल ग्राम नगर राज्य में ममत्व करे कि–यह कुल

भोजन ग्रहण करने में साधु की परिक्षा करे. ॥ ३१७ ॥

गाथा-आएवस्स तिरत्तं णियमा संघडओ दायव्वो ॥
सज्जा संथारो विय, जइवि + असंभोइओ होज्जा ॥ ३४८ ॥

अर्थ—अयाचित नवीन कोई प्राहुणा साधु आया हो उस की बाह्य शुद्धि देखकर परिक्षा किया विना ही उसे आचार्य महाराज तीन रात्रि पर्यंत अपने संघ मे रहने की आज्ञा दे. वस्तिक (स्थान) संथारक देना भी उचित है, फिर जैसा उचित देखे वैसा करे ॥ ३४८ ॥

गाथा-आचेलक उद्दासय, सज्जाहार रायपिंड पगियम्मे ॥
वद जेठ पडिक्कमणे, मास पज्जवोसण कप्पो ॥ ४२७ ॥

अर्थ—१ अचेलक, २ उद्देशिक, ३ शय्या-गृह त्याग, ४ राजपिण्ड त्याग, ५ कृति कर्म—वंदना, ६ व्रत, ७ जेष्ट ८ प्रति क्रमण, ९ मास कल्प और १० पर्युसन कल्प, ऐसे १० कल्प श्रमण—साधु के हैं (यही दश कल्प श्वेताम्बर के कल्प सूत्र में कहे हैं) ४२७ ॥

१. ' असंभोइ ' शब्द का अर्थ साथ (भेला) आहार आदि नहीं करने वाला हो तो उस का भी सहाय देवे.

आरोपन करते हैं. जो गुरु शिष्य के दोषों को देख कर उस का तिरस्कार नहीं करे, वह अच्छा नहीं किन्तु ठग है ॥ [यह गाथा सद्बोधक साधुओं के विरोधीयों को विचारणीय है]॥ ४८५ ॥ ४८६ ॥

गाथा-पण्णवणिज्जा भावा, अणंत भागो दु अणभि लप्पाणं ॥
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंत भागो दु सुदणिवद्धो ॥
गोमटसार.

अर्थ—अनाभिलाप्यानां अर्थात् वचन गोचर नहीं केवल ज्ञान ही के गोचर जो भाव जीवादिका अर्थ है उस के अनन्त वे भाग मात्र जीवादि अर्थ वह प्रज्ञापनीयाः अर्थात् तीर्थंकर के अतिशय दिव्य ध्वनी कर कहने में आता है ऐसा हैं और तीर्थंकर की दिव्यध्वनी कर पदार्थ कहने में आता है उस के अनन्त वे भाग मात्र द्वादशांग श्रुत में व्याख्याकी जाती है, जो श्रुत केवली को भी गोचर नहीं ऐसा पदार्थ कहने की शक्ति दिव्य ध्वनी में है और दिव्य ध्वनी कर भी नहीं कहा जाय ऐसा अर्थ जानने की शक्ति केवल ज्ञानी में

है ॥ १ ॥ [यह गाथा वर्तमान में द्वादशांगो को नहीं मानने वाले को विचारणीय है) यह गाथा भगवती आराधना में प्रक्षिप्त है. ॥ ७॥

गाथा—आचार वादिया अट गुणा दस विधेय ठि दि कप्पो ॥
बारस तव छावस्सय. छत्तीस गुण आयरिया ॥ ५३२ ॥

अर्थ—५ समिति, ३ गुप्ति, [यह ८ आचार]
१० स्थिति कल्प (जो ४२८ वी गाथा में कहे)
१२ प्रकार का तप. ६ आवश्यक (जो ४१०
गाथार्थ में कहे. यह ३६ गुण आचार्य के जानना॥
(इन से भी श्वेताम्बर सम्मत है) ५३२ ॥

गाथा—तेल कसायादीहिय. बारो गंडूसगा दु घत्तव्वा ॥
जिब्भा कण्णाण बलं, होदि तुंडं च विसदं ॥ [illegible] ॥

अर्थ—जब आहार त्यागने का अवसर आवे तब धारक साधु कु तेल तथा कषायले द्रव्य से बार बार गंडूसा (कुल्ले) कराने, जिस से क्षपक का जिव्हा का बल बोलने की शक्ति घटे नहीं, कान

से अशन करने की शक्ति घटे नहीं, मुख की निर्मलता बनी रहे, धर्म श्रवण धर्म कथा की शक्ति बनी रहे. (जो साधु को पात्र रखने का निषेध करते हैं उन को यह गाथा विचारणिय है) ॥ ६९२ ॥

गाथ—अच्छं बहलं लेवड, अलेवडं च ससित्थम सित्थं ॥
छविह पाणग मेयं पाणय परिकम्म पाणगं ॥ ७०४ ॥

अर्थ—स्वच्छ—उष्णजल, अमली का जल [धोवन] बहल (घट्ट) ससित्थ—चांवल के दानें सहित मांड, असित्थ चांवल के दाने रहित मांड, यह ६ प्रकार का पानी जिस में कितनेक का हाथ को लेप लगे और कितनेक का लेप नहीं लगे ऐसा पानी साधु को लेने योग्य है (धोवन पानी के निषेधक को यह गाथा विचारणिय है) ७०४ ॥

गाथा—ना पाणठ्ठ परिसाविय मम उयर मल सोधणठाए ॥
मधुरं पल्लिहादं, पंचेव विसेयणं स्ववओ ॥ ७०६ ॥

अर्थ-उक्त प्रकार का पान करने योग्य पानी उस

कर, साधन रूप क्रिया जो खयक (सांथारा का इच्छक) उस के उदर मल के शोधने के लिये मधुर वस्तु पाने योग्य है और मंद २ विरेचन कराने योग्य है (यह गाथा पात्र निपधक, औपधे/पचार निषेधक और धोवन पानी के निषेधक, इन को विचारणिय है) ७०६ ॥

गाहा—जं पाणय परियम्मपि, पाणयं छव्विहं समक्खादं ॥
तंसेताहि. कप्पादि, तिविहा हारम्स वोसरणे ॥ ७१३ ॥

अर्थ—जो पान के परिक्रम में प्रथम छ प्रकार का पानी कहा सो तीन प्रकार के आहार के त्यागी क्षपक को अथवा समाधी भाव के हेतु मुनि को पान करना योग्य है. फिर यथा काल में पान आहार का भी त्याग करे (यह गाथा धोवन पानी तिविहार उपवास और उपवास में सचित्त पानी भोगवने वाले को विचार नीय है) ॥ ७१३ ॥

गाथा—जे ... ॥

भणिदो को तेलोक्कं, वरिज्ज संजीविदं मुचा ॥ ७८० ॥
जं एवं ते लोक्कं, णग्घादि सव्यस्स जीविदं तम्हा ॥
जीविदघाद्यो जीवस्स, होदि तेलोक्क घादसामा ॥६८९॥

अर्थ—किसी मरते जीव को कोइ देव कहे कि एक तो त्रिलोक का राज और दूसरा तेरा प्राण इन दोनों में से एक तेरा दिल चहाय सो ग्रहण कर; तो अपने प्राण को छोड त्रिलोके के राज को कोइ भी ग्रहण नहीं करता है. इस लिये एक प्राणि के जीव का मूल्य त्रिलोक के मूल्य से भी अधिक है, ऐसा जान एक जीवकी घात है सो त्रिलोककी घात समान है ७८७

गाथा-सील वदं गुणोवा, णाणं णिस्संगदा सुहचाओ ॥
जीव हिंसं तस्सऊ सव्वेवि णिरत्थया होंति ॥ ७९२ ॥

अर्थ-हिंसक के शीलाव्रतादिगुण, ज्ञानाभ्यास, निःसंग, सुखत्याग सब निर्थक है. ॥ ७९२ ॥

गाथा-सव्वेसि सामणाणं हिदयं गब्भो दु सव्व सत्थाणं ॥
सव्वेसि वदगुणाणं, पिंडोसारो अहिंसा हु ॥ ७९३ ॥

अर्थ-अहिंसा धर्म सब आश्रम का हृदय है. सब शास्त्रों का रहस्य है और सब गुणों का पिण्ड है. इस लिये अहिंसा धर्म ही सब में सार भूत पदार्थ है ॥ ७१३ ॥

गाथा जीव वहो अप्प वहो. जीव दया होई अप्पणो हु दया ॥
विस कंटओव्व हिंसा. परिहरि दव्वा वदो होदि ॥ ७१७ ॥

अर्थ-पर जीव की घात है सो आप की घात है और पर जीव की दया है सो आप ही की दया है. जो पर जीव को एक वक्त मारेगा वह उस कर अनन्त वक्त मृत्यु पावेगा और जो एक ही पर जीव की दया करेगा वह अनन्त जन्म मरण से रहित होगा. ऐसा जान विष कंटक समान हिंसा त्यागना योग्य है.

गाथा-संकप्पंडय जादेण, राग दोस चल जमल जीहेण ॥
विसय बिल वासिणारादि मुहेण चित्तादि दोसेण ॥८८०॥
कोह महलोभेण दट्ठा, णट्ठाणिपोदमप्प दाढेण ॥
मा [illegible] सा भयमा, भीम दुक्खा वह विसेण ॥८[illegible]॥

अर्थ-काम रूपी सर्प मन रूपी आगमें उत्पन्न हुआ

राग द्वेष रूप चपल दो जिव्हा युक्त विषय रूप बिल में रहने वाला, रति सुख की आसक्तता रूप मुख वाला, चिन्तारूप रोष युक्त लज्जा रूप काँचली का परित्यागी, मदरूपी दाढ युक्त, भोग रूप महा विष वाला, जिस किसी को दंश करता है उस के ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुणोरूप शुद्धि का पराधीनता से नाश हो नर्क निगोद रूप धरणी पर पडता है ! ॥ ८८९-८९० ॥

गाथा-देहस्स वियणिप्पत्ति, खेत आहार जम्म वुड्ढीओ ॥
अवयव णिग्गम असुइ, पेच्छसु वाधीय अधुवत्तं ॥१००२॥

अर्थ—शरीर की—१ उत्पत्ती का बीज, २ उत्पत्ति का प्रकार, ३ उत्पत्ति का क्षेत्र, ४ आहार, ५ जन्म समय, ६ वृद्धि का प्रकार, ७ अवयव का प्रगटना, ८ द्वारों से मल का निःसर्ग, ९ अन्दर का विभाग, १० व्याधी-रोग, और ११ शरीर की अध्रुवता. उक्त ११ प्रकार के विचार से शरीर की अशुची का भान कर विषय विरक्त बन वीतरागता धारन करना चाहिये.

(—इन का आगे सविस्तार कथन किया है)॥१०२॥

गाथा—पंचवेय कोडीओ, अट्ठासटिं तहेव लक्खाइं ॥
णंवनवदिं च सहस्सा, पंच सया होंति चुलसीदी॥१०५४॥

अर्थ—इस शरीर में पांच क्रोड अडसट खाल निन्यानवे हजार पांचसो चौरासी रोग हैं॥१०५४॥

गाथा—थेरो बहुसुदो वा, पच्चइओ तह गणी तवसी वि ॥
अचिरेण लभदि दोसं, महिला वग्गम्मि वीसत्थो ॥१०८॥

अर्थ—स्त्री का विश्वास करने वाला-वृद्ध हो, बहुसूत्री हो, प्रतीत पात्र प्रमाण भूत हो, संघाधि पति-आचार्य प्रतिष्ठा पाया हुवा हो तपस्वी-हो इत्यादि कैसा भी ज्ञानी गुनी हो वह भी स्त्री से वचनालाप मात्र करने वाला थोड़े ही काल में ज्ञान गुन तप संयम से भृष्ट हो जाता है.

गाथा— रूपंगिदृस्स अबंभचारिणो अतिर[illegible] मणसा ॥
कायेण [illegible]वरणं, होदि दु पाव[illegible] [illegible] ॥[illegible]॥

अर्थ-जो अभ्यन्तर वेद से उत्पन्न हुआ मन का

सो ही परिग्रह है, उस युक्त अविरती जीव मनकर इन्द्रिय सुख का वांछक अभ्यन्तर आत्मा तो ऐसा है. और बाह्य में काया कर शील धारन करे है अर्थात् मुनि हो कर परिग्रह ग्रहण नहीं करे है नग्न रहे है, दुष्कर तप करे है. वह नट के समान स्वांग का धारक हैं. परन्तु वीतराग मार्ग का वाहक नहीं है. ॥ १२५६ ॥

गाथा-वत्थीहिं अवदवणता, वणेहिं आलेव तीयकिरियाहिं ॥
अब्भगण परिमद्दण, आदीहिं तिगिछ दे खवयं॥ १४९९ ॥

अर्थ-क्षपक साधु रोगादि कर पीडित होवे तब वस्ति कर्म (मलमूत्रादि प्रयोग कर निकालना) उष्ण करण-तावन लेपन शीत क्रिया मर्दन अंगदबाना मशलना इत्यादि के लिये फासुक द्रव्यका संयोग मिलाकर इलाज करना यहमुनि का कृतव्य है.जो रोगी साधु का इलाज नहीं करता है छोडदेता हैं, व अधर्मी निर्दयी धर्म से पराङमुखधर्म निन्दा कराने वालाहै॥ २५३॥

गाथा-ण नश्श दोसं पावइ, पच्चक्खाण मकरिंतु कालगदो ॥
जह भंजणा दु पावइ, पच्चक्खाण मदादास ॥ १६४१ ॥

अर्थ—तपाश्चरण विना संवर मात्र से ही कर्म क्षय नहीं होते हैं, जैसे भले प्रकार स्वरक्षरण किये धन उपभोगादि किये विना क्षीण नहीं होता है ॥१८४४॥

गाथा ण हु कम्मस्सय अविदिद फलस्स कस्सइ हविज्ज परिमुक्खो॥
होज्जव तस्स विणासो, तवग्गिणा डज्झ माणस्स ॥१८४८॥

अर्थ—फल दिये विना किसी कर्म का छूटका नहीं है, अपना फल देकर खीरे हैं सो सविपाक निर्जरा है, और तप करके दग्ध किये कर्म अपना रस दिये विन ही निर्जरे हैं सो अविपाक निर्जरा है ॥१८४८॥

गाथा—तवसा चेव ण मोक्खो संवर हीणस्स होइ जिणवयणे ॥
ण हु सोते पविसंते किसिणं परिसुस्सादि तलायं ॥१८५२॥

अर्थ—जिनेन्द्र कथित परमागम कहते हैं कि-संवर रहित पुरुष को तप करके भी मोक्ष नहीं है, जैसे जिस तलाव में जल का प्रवाह निरंतर आता हो वह रुक जाय तो भी ग्रीषम के आताप विना सूकता नहीं है. (यह १८४४ वीं गाथा के प्रत्युत्तर रूप गाथा है. मोक्ष दोनों के संगम से होती है) ॥ १८५२ ॥

गाथा–सम्म दंसण तुंवं, दुवालसंगारयं जिणंदाणं ॥
वयणोमियं जगे जयइ धम्मचक्कं तवाधारं ॥१८६३॥

अर्थ–जिनेन्द्र का धर्मचक्र जयवन्त प्रवर्तता है उस के सम्यक्त्व रूप मध्यका तुम्ब है, द्वादशांग रूप आरे हैं, पंच। महाव्रतादि रूप नेमी है, और तप रूप धार है. ऐसा भगवान का धर्म चक्र कर्म रूप वैरी यों को जीत कर परम विजय को प्राप्त होता है ॥ १८६३ ॥

गाथा–जे मज्झ निच्छाहा, भवंति ते सव्व संघकज्जेसु ॥
ते देव समिइ वज्झा कप्पंते हुंति साविच्छा ॥ १९५५ ॥

अर्थ–जो समस्त संघ के कार्य में उत्सहा रहित हैं, अर्थात मुझे क्या प्रयोजन? मैं ही हु क्या? मेरे से मेरा ही कार्य नहीं बने तो मैं कौन २ का करूं? ऐसे समस्त संघ के कार्य में–वैयावृत में अनादर कर सहित होते हैं, ये देवताओं की सभा में बाह्य परिषदा वाले (बाहिर बैठने वाले) मलेच्छ सुर होते हैं. (यह गाथा इस वक्त के जैनों को बहुत ही विचारणिय है!!) ॥२९५५॥

गाथा–दोस मरियं पि देवं, जीव हिंसाइ सुजुटं धम्मं ॥
संघासत्तं च गुरु, जो मण्णाइ सो हु कुदिट्ठी ॥ २ ॥

अर्थ-जो राग द्वेषादि दोष युक्त को देव माने, जीव हिंसा युक्त धर्म माने और परिग्रह में आसक्त को गुरुमाने. उसे ही मिथ्यात्व दृष्टी जानना (यह गाथा अन्य ग्रन्थमें की प्रक्षेपिक है. भगव० आ० पृ ६०३ मे)

गाथा—जोन कुणदि परतत्ति, पुणपुण भवेदि सुद्ध मप्पाणं ॥
इंदिय सुह निरवेक्खो, निसंकाइ गुणा तस्स ॥ १ ॥

अर्थ—जो पर की निंदा नहीं करता है, रागादि रहित वारम्वार आत्मा का अनुभव करता है और इन्द्रिय जानित सुख में वांछा का अभाव हो उन में ही निशंकित गुण (सम्यक्त्व का) जानना. यह भी गाथा प्रक्षेपित है भगवती आ० पत्र ६११)

यह ' भगवती आराधना ' ग्रन्थ श्री शिवाचार्य विरचित पंडित सदासुखजी विरचित वचनि का सहित शहा माणिकचंद मोतीचंद आलंद वालेने कोल्हापुर के जैनेंद्र प्रेस में ता० २४—माहे में १९०९ में छपा के प्रसिद्ध किया. इस का बहुत विभाग जैन साधुमार्गिय धर्म से सम्मत होने से यह ग्रन्थ बाई को बडा प्रिय था

शास्त्र परिक्षा.

छद्मस्थो से और केवलीयों के वचनों का अन्तर उनकी वाणी पर से या उन से प्रणित ग्रन्थों पर से ही होता है. जिस में सर्वज्ञ के वचन तो सर्वमान्य हैं और छद्मस्थों के वचन जो केवलीयों के कथन से सहानुमत हो वेही मान्य होते हैं. श्वेताम्बर मतावलम्बी अपने शास्त्रों को जिन प्रणित कहते हैं. और दिगम्बर मतावलम्बी जिन वाणी का विच्छेद हुआ कहते हैं. इस वक्त जो जो शास्त्रो उपलब्ध होते हैं वे सब आचार्य प्रणित बताते हैं. और इस ही कारण से शास्त्र के वचनों परस्पर विरुद्धता देखी जाती है.(यह कथन एक प्राप्त पत्र से उद्धृत किया है) जैसे—

१ श्री समंत भद्राचार्य कृत "रत्न करंड श्रावकाचार" मे श्रावक के मूल गुण इस प्रकार कहे हैं.—

श्लोक—मद्य मांस मधुत्यागैः. सहाणु व्रत पंचकम ॥
अष्टौ मूल गुणाना हु गृहिणां श्रमणोत्तम ॥

अर्थात्—मद्य (मदिरा) मांस मदिरा और पंच अणु-

व्रत इन अष्ट मूल गुण पालक* श्रमणोत्तम गृहस्थ होते है.

२ श्री जिन सेनाचार्य कृत "आदि पुराण" में अष्ट मूल गुण इस प्रकार हैं—

श्लोक—हिंसा सत्यस्तेयाद् ब्रह्म परिग्रहाच्च बादर भेदात् ॥
द्युतान्मांसान्मद्या द्विरति गृहिणोऽष्ट मन्त्यमी मूल गुणाः ॥

अर्थात्—इन ने उक्त अष्ट गुणों में से 'मधु' को निकाल कर 'द्यूत—जूवा त्याग' को रखा है,

३ श्री सोमदेव सूरि कृत-"यशस्तिलक" में श्रावक के मूल गुण इस प्रकार कहे हैं—

श्लोक—मद्य मांस मधुत्यागी. त्यक्तोदुम्बर पंचकः॥
नामतः श्रावकःक्षान्तो. नान्यथापि तथा गृही ॥

अर्थ—१ मदिरा २ मांस, ३ मधु, पंच उदुम्बर फल (४ सुक्षम, ५ वड, ६ पिंपल, ७ उम्बर, ८ और गूंद) इन का त्याग, रूप अष्टमूलगुण कहे हैं.

४ श्री अमृतचन्द्र सूरि कृत—"पुरुषार्थ सिध्युपाय" में इस प्रकार मूल गुण कहे हैं—

श्लोक—मद्यं मांस क्षौद्रं, पंचोदुम्बर फलानि यत्नेन ॥

---

* नोट—यहां श्रमणोत्तम शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है, क्या ऐसे श्रावक श्रमण—मुनि से भी उत्तम है ऐसा समझना ?

हिंसाव्युपरत काम मौक्त न्यानि प्रथम मेव ॥ ६१ ॥

अर्थ—१ मदिरा, २ मांस, ३ क्षुद्रता और पंच उदुम्बर फल के त्याग को प्रथम करना कहा है, ५ अमितगति आचार्य कृत उपसकाचार, मे कुछ वृद्धि करते हैं.

श्लोक-मद्यमांस मधु रात्रि भोजन क्षीरवृक्ष फल वर्जनं त्रिधा.;

अर्थ-१ मदिरा, २ मांस ३ मधु, २ रात्रिभोजन और क्षीर वृक्ष के फल (उदुम्बर) यह ८ कहे है, ६ पं० आशाधरजी कृत-सागरधर्मामृत में अष्टमूल गुण इस प्रकार कहे हैं.

श्लोक-मद्य फल मधु निशासनं पंचफली विरति पंच का मनुति ॥
जीवदया जलगालनमिति च कचिदष्ट मूलगुणाः ॥

अर्थ-मदिरा, २ मांस, ३ मधु, ४ रात्रिभोजन ५ पंचउदुम्बर, ६ नवनीत, ७ जीवदया, और ८ पानी का छानानादि. यह अष्ट मूल गुण है.

अर्थ-यों मूल गुणों मे भी जब इतना फेर है तो अन्य बातों का तो कहना ही क्या ?